रा० त्रि०

चतुष्पथ

रामदेव त्रिपाठी
अध्यापक, नेतरहाट विद्यालय, नेतरहाट

१९६३ ई०]

मूल्य—२)

संशोधित

चतुष्पथ

रामदेव त्रिपाठी
अध्यापक, नेतरहाट विद्यालय, नेतरहाट

१९६३ ई०]

मूल्य—२)

प्रिय सरस्वती (लाल मोती)

को

सजल स्मृति

को

सस्नेह

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव त्रिपाठी जी ने 'चतुष्पथ' के प्रकाशन का भार मुझ पर डालकर मेरी योग्यता पर बहुत भरोसा किया है। मैं उस योग्य हूँ नहीं, किन्तु उन्हें मेरी परीक्षा लेने का अधिकार तो हमेशा ही है। और आज तो अनेकानेक अणुवीक्षण दृष्टियों के सामने लाकर उन्होंने मुझे अवदात-गौर बना लेने का महान् अवसर दे दिया है। भरसक मैंने त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न किया है। अगर वे फिर भी रह गई हों, तो उसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ओढ़ लेने में मैं कोई संकोच नहीं करूँगा।

मेरी अनुपस्थिति में प्रिय भाई अरुण ने स्वयं ही प्रकाशन-कार्य को आँच नहीं आने दी है। अतः कुछ आभार-प्रदर्शन तो उनके प्रेम का मूल्य कम करना होगा।

अच्छा होगा यदि ये कविताएँ अपने ही स्वरों में गायें। यहाँ इतना ही कहना इष्ट है कि मैंने इन्हें समय-समय पर कवि के ही सजल-सुरीले कंठ से सुना है और हर बार तन्मयता के सागर में निमग्न हुआ हूँ। 'माया' नामक नया खंड देखकर मैं आश्चर्यित हुआ था, किन्तु यह समझते देर नहीं लगी कि 'सत्-चित्-आनन्द' (सौन्दर्य) माया का धूमिल पट डालकर ही मनुष्य बन सकता है। इसलिए ये कविताएँ मनुष्यता के स्पर्श से दूर नहीं हैं। इनकी कल्पनाओं के ताने-बाने को पहनकर आप शीतातप से बच भी सकते हैं, इनकी सुघड़ता पर रीझकर हर्षमग्न भी हो सकते हैं।

१६-१० ६३ ई०

इत्यलम्।

जयमंगल

आशंसा

श्रीरामदेव त्रिपाठी संस्कृत और हिन्दी के पारदृश्वा विद्वान् हैं। व्याकरण, दर्शन और साहित्य पर उनका अद्भुत अधिकार है। उनका ज्ञान केवल ग्रन्थाश्रित नहीं अपितु मौलिक चिन्तन से ऊर्जित है। किन्तु इससे भी बड़ी बात यह है कि उनके ज्ञान की आलोक-रश्मियों में सहृदयता की इन्द्रधनुषी रमणीयता है। त्रिपाठीजी के व्यक्तित्व को देखकर मुझे अग्निपुराण का यह प्रसिद्ध श्लोक अनायास स्मरण हो आता है :—

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र तु दुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।।

परिवार-नियोजन का अहर्निश प्रचार करनेवाले वर्त्तमान युग में नरत्व दुर्लभ नहीं रह गया है पर विद्या, कवित्व एवं शक्ति आज भी दुर्लभ हैं और इस 'दुर्लभ-त्रयी' का समाहार तो निश्चय ही विरल है। त्रिपाठीजी उस विरलता के सुलभ उदाहरण हैं। उनमें उच्च कोटि की नैसर्गिक प्रतिभा है। व्युत्पत्ति का तो कहना ही क्या है? और अभ्यास का क्रम उन्होंने कभी अवरुद्ध नहीं होने दिया है। इस प्रकार सत्कवित्व के सभी साधनों से समन्वित उनकी वाणी काव्य-रसिकों को आप्यायित करने में सर्वथा समर्थ है। मैं उसका अभिनन्दन करता हूँ।

देवेन्द्र नाथ शर्मा
आचार्य तथा अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग,
पटना विश्वविद्यालय

पटना,
विजया दशमी, २०२०

आमुख

'चतुष्पथ' की रचनाएँ चार मार्गों की ही नहीं चार युगों की भी हैं। जब मैं १०-१२ का था तभी से संस्कृत तथा हिन्दी में कविता करने की प्रेरणा मुझे मिली। तब से आज तक मैंने संस्कृत, हिन्दी, तथा भोजपुरी में बहुत सी कविताएँ लिखीं। १२ की आयु से पहले की कविताओं में अवश्य ही भाषा का बालपन तथा विषय के प्रतिपादन में कल्पना की उड़ान का अभाव है। १३ से २४ की आयु में लिखी कविताओं में मेरे छात्र-जीवन के संघर्ष तथा उदीयमान तारुण्य की तरलता का अनायास प्रवेश हो गया है। दोनों के मेल से मरीचमिश्रित आपानक-सी एक वेदनामय सुखानुभूति की अभिव्यक्ति हो रही है। २५ से ३६ के बीच की रचनाओं में संसार को अधिकाधिक समझने का प्रयास, जिज्ञासा प्रतिबिम्बित है। और मेरे जीवन के चौथे युग में, ३७ के बाद तो लगता है युगधर्म, छल-प्रपञ्च की व्याज स्तुति हावी होने लगी है। ठीक ही तो है, खद्योत कवि समाजस्रष्टा नहीं समाजसृष्ट ही हो सकते हैं।

अब तो यह स्थिति है कि चित्, सौन्दर्य, सत् तथा माया से रचे अपने जाल में मैं स्वयं उलझ गया हूँ, इस चतुष्पथ पर आकर मैं स्वयं कर्त्तव्य-विमूढ़ हो रहा हूँ। शैशव में दुनिया को, सत् को, स्थूल पदार्थों को जैसा देखा—समझा कह दिया। तारुण्य में उन वस्तुओं के देखने-समझने से प्राप्त आनन्द नृत्योन्मुख भाषा में मुखरित हुआ। और प्रगल्भता में आनन्द से ज्ञान की ओर, सतह से अन्तर की ओर आत्मा दौड़ी। हृदय की अनुभूति पीछे रह गयी, बुद्धि का विश्लेषण आगे बढ़ गया। और आज, आज तो कबीर के पुत्र कमाल की भाँति, या यों कहें "गुरु गुड़ तो चेला चीनी" की भाँति, बुद्धि की तनया धूर्तता अपनी मन्त्रणा-वात्या में समस्त आत्माओं को तूलकण की भाँति आकाश में नचा रही है। सब की आँखों में धूल का आवरण छा गया है। क्या संसार उलटी दिशा में जा रहा है? यह भी तो शैशव से प्रौढ़ता की ही ओर बढ़ रहा है न?

जो हो, इस चतुष्पथ पर मैं ही नहीं सारा विश्व खड़ा है। सत् का मार्ग पकड़ना हो तो कर्म का सहारा लीजिए, बालकों सा निरन्तर कर्मव्यस्त रहिए। आनन्द-सरणि प्रिय हो तो तरुण बने रहिए, हर मुखड़े में सौन्दर्यानुभूति कीजिए तथा कल्पनालोक में विचरण करते हुए भक्तियोग से कण-कण में राधामाधव को देखिए। यदि ज्ञानपदवी पानी है तो प्रगल्भोचित गंभीरता लाकर सांख्ययोग से सत्-असत् का विवेक कीजिए, तत्त्व का अनुसंधान कीजिए। और यदि मय की तरह सब कुछ बन जाने और बना लेने की आकुलता हो तो उसकी माया के आराधक बनिए "सर्वः स्वार्थं समीहताम्।" शंकराचार्य ने संसार को माया से हटकर ज्ञान और आनन्द से होते हुए शुद्ध सत्ता की ओर ले जाने का प्रयास किया, पर शंकराचार्य तो आज हैं नहीं। अब दुनिया शुद्ध सत्ता से हटकर माया की ओर दौड़ रही है। शैतान मय ने अच्छा बदला लिया है। यह भस्मासुर अब भगवान् के सिर पर हाथ रखने को बेचैन है।

और हर्ज ही क्या है, घड़ी की सूई दाईं ओर चलकर १ से १२ पर आवे, या बाईं ओर चलकर १२ से १ पर, फर्क क्या पड़ता है? पूर्ववर्त्ती ज्योतिषियों ने पृथ्वी को अचला मानकर सूर्य से ही गगन की परिक्रमा कराई, तो कौन कहे गणित का बाल भी बाँका हुआ! सब वृत्ताकार है, सीधा-उलटा की कल्पना ही व्यर्थ है। मार्ग परस्पर भले ही सीधे-उलटे हों, मनुष्य की प्रगति में अन्तर नहीं आता। धरती तो रोज एक बार उलटती है, पर हम कहाँ कभी उलटा टँगते हैं? फिर मनु की कामायनी की भाँति हमें कौन सी नायिका प्राप्त है जो अपनी मुस्कुराहट के जादू से विन्दुत्रय को एक में मिलाने की भाँति हमारे इस विपरीत दिशागामी मार्गचतुष्टय को एक ही मार्ग में परिणत कर दे? जब समानान्तर रेखाएँ ही नहीं मिलतीं तो ये एक दूसरे को काटने वाली रेखाएँ कब कैसे एकाकार होंगी? अच्छा है, "भिन्नरुचिर्हि लोकः"। जनता में नैनसुख का भी बुशशर्ट चलता है और छींट का भी।

कुछ कविताएँ ऐसी भी मिलेंगी जो एक वर्ग की भाँति दूसरे वर्ग में भी आ सकती हैं, पर यह अस्वाभाविक नहीं। स्वयं चारों वर्ग भी कई जगह एक दूसरे से मिलते हैं, हटते हैं। किन्तु "प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति"। जैसा कि अभी बना है कुछ कविताएँ शुद्ध वर्णनात्मक, इतिवृत्तात्मक हैं, विशेषतः आरम्भकाल की। पर उनका यही आकर्षण है कि वे अलंकार-शून्य हैं। और मुझे तो सभी प्रिय हैं। माता का स्नेह निर्गुण संतान पर भी रहता है।

यह आवश्यक नहीं कि 'सत्' के भीतर संगृहीत सभी कविताएँ शैशव की ही हों, 'चित्' के भीतर संगृहीत प्रौढ़ता की ही। व्यतिक्रम भी हुआ है, क्योंकि कविताओं का क्रम रचना काल से नहीं, अपितु-रचना के स्रोत से तथा विषय और प्रवृत्ति की दृष्टि से है। पारखी पाठक कविता पढ़कर स्वयं समझ लेंगे कि कौन सी पूर्ववर्त्ती तथा कौन सी परवर्त्ती है।

"स्वान्तःसुखाय" के लिए लिखी गई ये कविताएँ मेरे अन्तःकरण में ही सोयी रहतीं यदि मेरे कुछ सहृदय शिष्य इन्हें यदा-कदा पढ़कर सुनाने तथा अन्त में प्रकाशित करने का साग्रह अनुरोध कर मुझसे इनकी "लिखे अल्ला पढ़े खुदा" की मूललिपि लेकर मुद्रण के लिए पाण्डुलिपि तैयार न करते। अब तो मेरे एक अन्तरंग शिष्य, बिहार के एक उदीयमान कवि श्री जयमंगल प्रसाद सिंह ने इनका सर्वाधिकार भी मुझ से ले लिया है। वे चाहे इन्हें जिस रूप में प्रकाशित करें, शिक्षकों का सर्वस्व तो शिष्यों का है ही।

जन्माष्टमी रामदेव त्रिपाठी

वि० २०२०

अनुक्रम

चित्

सौन्दर्य (आनन्द)

सत्

माया

चित्

यह दुनिया

कैसी यह दुनिया माया की ?

छोड़ मूल हम भूल पड़े हैं मृग-मरीचिका में छाया की ।।
समय में भी भय की चितवन है, प्रेम-सुधा में भी विष-कण है ।
अरे, बुद्धि की बना कसौटी यहाँ फरेबी छिछला मन है ।
दोस्त अधिक जितने हैं जिसके, उतना ही बस वह एकाकी ।। कैसी ।।
बड़े बने, जितने थे छोटे, खरे कहाते, हैं जो खोटे ।
दानी वे, आहार दूसरों का खाकर ही हैं जो मोटे ।
जो लोलुप जितना उतनी ही प्रीति अधिक उस पर माता की ।। कैसी
अनिश पसीना कौन बहाते, और इत्र से कौन नहाते ।
दुपहरिया की धूप ताप, कितने बिजली का पंखा पाते ।
जो कल का भूखा है, सचमुच वही आज भी करता फाँकी ।।
नहीं मेह भी मरु में जाता, नहीं नेह भी दुखिया पाता ।
धरती का सारा पानी बस सागर ही में बहकर जाता ।
कल के हत्यारे, देखो दे रहे दुहाई आज दया की ।।
जिसका जितना हो मन काला, उसकी उतनी लम्बी माला ।
अरे, बचाये राम हमें, मत पड़े कभी भक्तों से पाला ।
जो जितना ही सत्त्वहीन, उसकी उतनी ही लम्बी हाँकी ।।
एक-एक कर सब हैं फँसते, एक दूसरे को सब हँसते ।
एक दूसरे की हालत को देख सभी ये मूढ़ तरसते ।
हार-जीत बन गई पहेली ही, इस नगरी में काया की ।।

★

मानवता का हल

नयनों में भरा रहा सागर,
बुझ सका न उर का बड़वानल !

लक्ष्मी कुबेर भी हर न सके,
फैली दरिद्रता अग-जग में।
शंकर ~~शिव और~~ गणेश से भी न टला,
जो मचा अमंगल पग-पग में !
बाहर हिमशैल गगनचुम्बी,
भीतर पर ज्वालामुखी अतल !

हैं पुण्य-पाप सुख-दुःख प्रभा-तम,
स्वास्थ्य साथ ही रोग यहाँ।
कटता न तनिक भी प्राप्य अंश से,
देय भाग का भोग यहाँ।
धरती की प्यास मिटी न कभी,
रह गया बरसता जलधर जल !

श्रम औ' पूँजी में कटु विरोध,
तृष्णा का कहीं निरोध नहीं।
शैतान और इन्सान, असुर-
सुर का हो पाता शोध नहीं।
पट चुकी पोथियों से पृथ्वी,
पर मिला न मानवता का हल !

विज्ञान-ज्ञान सुलझा न सके,
इस मृषा-सत्य भव-सपने को।
जल, थल, नभ सब हम माप चुके,
मापा न कभी पर अपने को।
बन गया वही सबसे मुश्किल,
जो था सबसे आसान सरल !

क्या खूब ! निरीह प्रजा के हित ही,
प्रजातंत्र बन गया सजा।
गाया जाता है शांति-गान,
अणुबम का ही रण-पणव बजा।
मानव करने को तुला प्रलय
अपना खुद, आज नहीं तो कल !

★

द्वैत

तू मैं दोनों एक, द्वैत कैसा हममें फिर !

सौर-प्रणाली तू, उसका ही अंश इन्दु मैं,
महावृत्त तू, छिपा उसी में परिधि-बिन्दु मैं,
तू समष्टि, मैं व्यष्टि नहीं हममें अनैक्य चिर !

तू असीम-पट बुना, वहीं मैं किन्तु तन्तु हूँ,
ज्योतिष्पथ तू, उदित वहीं मैं उडु परन्तु हूँ,
भेद इकाई और दहाई का यह अस्थिर !

ज्योतिर्मय ब्रह्माण्डपिण्ड तू, प्रतनु मैं किरण,
शिखा-स्तोम तू प्रलयानल का, मैं स्फुलिङ्ग-कण,
तू साधन है सही, साधना पर मैं आखिर !
साधना-चरण तू

अपरिमेय तू महाजलधि, मैं एक बिन्दु जल,
तू अशेष शतपत्र, एक मैं लघु उसका दल
रह सकता क्या तू ऊपर जाऊँ यदि मैं गिर !

तू मुक्तामय हार एक मैं उसका दाना,
शाश्वत तू संगीत, मधुर मैं एक तराना,
हम दोनों के बीच द्वैध सकता कैसे घिर ?

★

मैं सैनिक हूँ

मैं सैनिक हूँ, हैं महावीर सेनानी,
राजा हैं मेरे राम, जानकी रानी।
जग समरभूमि, संग्राम कठिन जीवन है,
शुभ-अशुभ शक्तियों में चलता नित रण है।

हो देववृन्द विजयी, दानवदल हारे,
सत् हटा असत् को धर्म-केतु निज गाड़े।
केन्द्रित मेरे सारे प्रयास इस मग में,
उत्साह भरा संघर्ष हेतु रग-रग में।

हो शीत-उष्ण या राग-द्वेष या सुख-दुख,
निर्भय हो सबसे लड़ता हूँ मैं अभिमुख।
बाधा-विपदा के लिये विकट मैं भट हूँ,
मैं काम आदि षड्-रिपु का काल प्रकट हूँ।

चिन्ता, विषाद, संशय सब मुझसे डरते,
बढ़ते लख मुझको दूर दूरतर टरते।
आ जाती जो मेरे समीप कठिनाई,
कर देता उसकी चूर तमाम ढिठाई।

मैं अन्तिम क्षण तक लड़ता सदा रहूँगा,
जर्जर हो जाऊँ, 'आह' न किन्तु कहूँगा।
मैं नहीं जानता रण में पीठ दिखाना,
थकना, उकताना, रुकना, बना बहाना।

तापत्रय - चक्रव्यूह- मेह बिखरा दूँ,
प्रतिपक्ष-कक्ष में हाहाकार मचा दूँ।
शैतान स्वयं जो दनुजराज आ जाये,
सामने तेज के मेरे ठहर न पाये।
मेरी अनुमति के बिना मृत्यु जो धावे,
रुख देख उग्र मेरा ठिठके, पछतावे।

विश्राम नहीं मैं कभी चाहता लेना,
अवशेष अभी है, बहुत जगत को देना।
मैं साहस-ओज-प्रदीप्त वीर पुंगव हूँ,
मैं आधि-व्याधि-कानन-हित जलता दव हूँ।

यम, नियम, धैर्य, शम, दम अमोघ सब शर हैं
अक्षय तरकश संकल्प-शक्ति, क्या डर है ?
है विजय-पराजय, लाभ-हानि रघुपति की,
यश-अपयश चर्चा मारुति सेनापति की।

यह वीर धर्म है कभी न पीछे हटना,
हो शत्रु अबल या प्रबल अन्त तक डटना।
बस लड़ने के ही लिये मुझे लड़ना है,
न विषाद-हर्ष में तनिक कभी पड़ना है।

अधिकार-क्षेत्र है लड़ना केवल मेरा,
मैं करूँ सफलता-असफलता क्यों हेरा ?
पर सिद्धि वरेगी स्वयं मुझे आ निश्चय।
रिपुदल का कौशल शौर्य वृथा बल-संचय।

सारथिवर मायानाथ साथ खुद रथ में,
मैं पार्थ महारथ रुकूँ कहीं क्यों पथ में ?
नर का बल कुछ, कुछ नारायण का छल है,
इस भाँति हमारे दल की जीत अटल है।

है घृणा मुझे डरपोक और कायर से,
मैं कफन बाँधकर चला स्वयं हूँ घर से।
भू-लुण्ठित होकर भी न कभी रोऊँगा,
मैं कभी मनुज-कुल कीर्त्ति नहीं धोऊँगा।

तन छूट जाय, हिम्मत न कभी छूटेगी,
कातर न कण्ठ से गिरा कभी फूटेगी।
मोर्चे से अपने तिल भर नहीं टलूँगा,
बन दीन न आत्म-समर्पण कभी करूँगा।

✦

मैं

भवजलधि, विषय जल, पोत विपुल मानव तन,
मझधार जवानी उत्कट, तट जन्म-मरण।
कामादि दोष हैं ग्राह, मगर, शठ जलचर,
झंझानिल सा त्रय ताप रहा दिखला डर।

मन-सहित इन्द्रियाँ केवट दल, धृति कूपक,
यम, नियम, पुण्य, गुण पाल, बुद्धि दिग्दर्शक।
पटु कर्णधार हूँ पथिक जीव मैं देही,
'कप्तान' स्वयं नारायण दीन-सनेही।

अति सावधान हो मुझे पोत यह खेना,
मत डुबो इसे दे विघ्नों की ही सेना।
वासना-वीचि ले खींच न इसे कहीं फिर,
इस भांति बांधना पार इसे पहुँचा स्थिर।

गतिविधि मेरी सब परख रहे जलशायी,
त्रुटि कहीं न मेरी देवे उन्हें दिखाई।

× × ×

जग रंग-मंच, नाटक महान् यह जीवन,
आते-जाते चर-अचर पात्र नर्त्तक बन।
डमरू-प्रिय ताण्डव-निपुण महानट शंकर,
आसीन स्वयं हैं सूत्रधार के पद पर।
मिल गयी उन्हें है नटी महामाया सी,
जो कुशल लास्य में कहलाती चपला सी।
निर्देशक नटवर रसिक राज मुरलीधर,
रचते लीला बहुविध अवतार ग्रहण कर।

है प्रकृति-राधिका रास-विलास-मुदित-मन
बाँसुरी अनाहत नाद, मुग्ध है कण-कण।
नाचती तितलियाँ, परियाँ, पंछी गाते
गिरि, सरिता, मरु, तरु, तृण हैं दृश्य सजाते।

ऋतुमयी यवनिका रहती सदा बदलती,
सविता, सुधांशु, तारों की बिजली जलती।
हैं पात्र विशेष महत्त्वपूर्ण मानव-जन
मैं भी उतरा हूँ वहीं स्वाङ्ग कर धारण।

है रोग, भोग, संयोग, वियोग, दिखाना
यह दुख, सुख, हँसना, गाना, अश्रु बहाना।
फिर संपद, आपद, लाभ, हानि वसनाशन,
शृंगार करुण औ' वीर भयानक प्रहसन।

आकृति, इंगित, चेष्टित घटनाएँ नाना,
अनुकरण मनोभावों का मूर्त बनाना।
मैं हूँ अभिनेता - मात्र मुझे क्या लेना,
ज्यों का त्यों सबका बस अभिनय कर देना।

न विषाद हर्ष में मुझे कभी है पड़ना,
संकेत एक नटवर का मुझे पकड़ना।
हो चूक न किन्तु कभी अभिनय में मेरे,
त्रुटि मुख-मुद्रा में कहीं न कोई हेरे॥

जनता को अपनी दिखला कला रिझाना,
पर्दा गिरते ही नटवर के ढिग जाना।
यह जगत् तीर्थ, मन्दिर शरीर अतिपावन,
सिंहासन-मानस-गत प्रभु-मूर्त्ति सुहावन।
मैं जीव यहाँ हूँ भक्त नियुक्त पुजारी,
पूजा रखनी है उनकी अविरल/त जारी।

प्रेमाश्रु वारि से प्रभु को मैं नहलाता,
स्तुतिगीत-रूप मैं मधुमय गिरा सुनाता।
संकल्प सुमन से उन्हें सदैव सजाता,
मैं अर्घ्य स्वादु वेदोदित कर्म चढ़ाता।

मैं नाद अनाहत घंटा मधुर बजाता,
नैवेद्य अन्न सात्त्विक का भोग लगाता।
भीतर-बाहर मन्दिर का कोना-कोना,
मैं नहीं भूलता कभी नालियाँ धोना।

दुर्गन्ध मैल कुछ भी न कहीं पर छूटे,
देवालय का सड़ भाग न कोई टूटे।
कुविचार म्लेच्छ मत कभी यहाँ घुस पावे,
चौकस हूँ मैं नित ध्यान-कपाट लगाये।

× × × × ×

जग यह विराट् यन्त्रालय विस्मयकारी,
हैं यन्त्र विविध चर अचर सभी नर नारी।
मानव-शरीर है यन्त्र मुख्यतम इसमें।
पुर्जे बलशाली सूक्ष्म अमित हैं जिसमें।

मजदूर जीव, यन्त्राधिप रमानिकेतन,
सुख दुख का मिलता गिन-गिन सबको वेतन।
कल इस मशीन का बिगड़ न कोई जाये,
चिर दिन यह चालू रहे न मुर्चा खाये।

है भार सदा मेरे हित का सब उन पर,
पर 'बोनस' 'पेंशन' निर्भर मेरे गुन पर।
हो माल प्रचुर तैयार काल में थोड़े,
क्षण भर न काम से मन मेरा मुँह मोड़े।

है टेक एक, उद्देश्य यही बस मेरा
मालिक खुद करते हानि-लाभ सब हेरा।
यदि यही सोच कर चलता सदा रहूँ मैं,
जीवन सुखमय हो, दुःख न कभी सहूँ मैं।

★

संकल्प-शक्ति

महिमा अब संकल्प-शक्ति की
मैंने भी पहचानी है।
यही ब्राह्म बल, यही मनोबल,
यही आत्मबल, यही तपोबल।
नाम-रूप है नया, वस्तु पर इच्छा-शक्ति पुरानी है।
रोग शोक सब दूर करूँगा,
दर्प दैव का चूर करूँगा।
दीन-हीन जो बना आज तक, वह मेरी नादानी है।
जो चाहूँगा वह मैं हूँगा,
जो माँगूँगा वह मैं लूँगा।
यही स्वर्ग-अपवर्ग प्राप्ति का गुर, वेदों की बानी है।
ईश्वर हूँ मैं ईश्वर-सुत हूँ
हाँ ! अनन्त प्रभुता-संयुत हूँ।
त्रिविध ताप क्या, स्वयं काल को वश करने की ठानी है।
कामधेनु लूँ गुरु वशिष्ठ सा,
कल्पवृक्ष लूँ हरि वरिष्ठ सा।
गाधि-तनय सी नयी सृष्टि करने की क्षमता पानी है।
महिमा अब संकल्प-शक्ति की मैंने भी पहचानी है।

★

भरोसा

मुझको तो भरोसा बस, हे राम तुम्हारा है।
अशरण-शरण दयामय, यह नाम तुम्हारा है।
धर्मी तपी परम या पापी पतित चरम या,
सुनता हूँ खुला सबके हित धाम तुम्हारा है।
अच्छा हूँ या बुरा मैं हूँ, जो कुछ हूँ तुम्हारा हूँ,
बिगड़े को बना लेना, तो काम तुम्हारा है!
चुपचुप पीड़ा सहूँ लूँ, धीरज मनमें धर लूँ,
कुटिया ही तो दुखिया की, विश्राम तुम्हारा है।
बरबाद हो रहा जो, मरजाद खो रहा जो,
अपमान न वह मेरा, घनश्याम तुम्हारा है।

दाता

हम दीन अनाथों का, भगवान् सहारा है।
वह नाथ, सखा, भाई, माँ-बाप हमारा है।

दुनियाँ हमे ठुकरा दे, दुनियाँ हमें बिसरा दे।
उसने तो सुधि ली है, उसने तो दुलारा है।

हिम्मत नहीं हारें हम, उसको ही पुकारें हम।
आये को शरण उसने, हर बार उबारा है।

वह आप हँसायेगा, वह आप बसायेगा।
जिस भाँति रुलाया है, जिस भाँति उजाड़ा है।

असहाय नहीं हैं हम, निरुपाय नहीं हैं हम।
घर में तथा वन में भी प्रभु ही रखवारा है।

जग से न कभी माँगें, जग के न झुकें आगे।
है एक वही दाता, मँगता जग सारा है।

★

कामना

प्रभो मुझे न थी, न है कभी विलास-कामना,
करूँ सदैव दैव-पाश का सहास सामना।

महीं यही अनल्प तल्प-कल्प दास के लिए,
मकान आसमान खास पास वास के लिए।

विपत्ति-संपदा विषाद-हर्ष भी समान हों,
अमित्र मित्र हों, सहाय जो कृपा-निधान हों।

न वाजि-राजि, शान-मान, जाल भूमिपाल का,
विवेक एक नीर-छीर में मिले मराल का।

न नेह देह-गेह से, न कामिनी ललाम से,
मुझे तमाम याम काम एक राम नाम से।

मनोविकार मोह अन्धकार दूर टार दे,
उदार कर्णधार पार तू मुझे उतार दे।

सुना कि भक्त को कभी कहीं न तू बिसारता,
पुकारता विपन्न जो, उसे सदा उबारता।

अशास्त्रनेत्र मैं, अनन्त राह, हेर दे न तू,
अदक्ष मैं, अदम्य चित्त-अश्व, फेर दे न तू।

न राह हो गही सही, न हीन किन्तु चाह है,
न बन सका महान्, तुच्छ हूँ, परन्तु आह है।

कपूत मैं, पिता परन्तु हाय! तू विचारता,
दुलार, मार या किसी प्रकार तो सुधारता।

★

मायापति

माया-पति गति तेरी बाँकी, कोई भेद न पाता
क्या करते हो, कहाँ बसे हो, कोई नहीं बताता ॥

देख तुम्हारी निपट निराली नित नव-लीला जग में
चलता-चलता कभी-कभी डर जाता मैं भव-मग में ॥

नानाविध मतभेद-पूर्ण बातें शास्त्रों में भी हैं
कौन बताए कौन झूठ हैं, इनमें कौन सही हैं ॥

कहीं लिखा है, ब्रह्मचर्य-व्रत आजीवन जो रखता
जन्म-मरण से रहित सदा वह मुक्ति सुधारस चखता ॥

कहीं लिखा, करके विवाह जो पुत्र नहीं जनमाता
जाता है वह नरक, पिता से उऋण नहीं हो पाता ॥

कोई कहता है, जग में जी लगा काम करने से
होते हो तुम मुदित अडिग माया से ही लड़ने से ॥

कोई कहता कृपा-दृष्टि का तेरी वह अधिकारी
तज निज घर परिवार विभव जो स्तुति में लीन तुम्हारी ॥

छोड़ पिता-माता को फिर जिस कौशिक ने तप ठाना
उसे व्याध की गीता सुनने विनत पड़ा क्यों जाना ॥

कोई सन्त बताता मुझको मातृ-पितृ-गुरु-सेवा
जप, तप, संध्या यही, मात्र भव-जल तरने का खेवा ॥

बिना विचारे भला-बुरा जो माने वचन पिता का
कहते तुम भी स्वयं उसी की उड़ती विजय-पताका ॥

नहीं किया स्वीकार पिता का बचन एक भी अपने
तब भी क्यों प्रह्लाद को नहीं दुख में दिया तड़पने ॥
कोई कहता है मनुष्य जो पातक करता सारा
मिट जाता है एक बार लेने से नाम तुम्हारा ॥
कोई कहता नाम जपो या करो रात-दिन पूजन
पाप किया जो भोगोगे वह, अमिट कठिन यह बन्धन ॥
नित्य पढ़ाती थी अपने तोते को नाम तुम्हारा
बस इतने से हो गणिका को तूने नाथ ! उबारा ॥
मरते समय नाम ले तेरा सुत का किया स्मरण था
क्रूर कसाई का इतने से छूटा जन्म-मरण था ॥
माला जपी तुम्हारी नित, तुमको निज शीश चढ़ाया
क्यों उस रावण को सुबुद्धि दे तूने नहीं बचाया ॥
संध्या-वंदन से तुम पाप मिटाते यदि जीवन का
तो तुम प्रेमी हुए खुशामद करने वाले जन का ॥
और अगर है ध्यान, योग, जप निरा झूठ आडम्बर
क्यों पाते सुख-शान्ति इसी से ऋषि, मुनि, निःस्व दिगम्बर ॥
जान रहे जब हो समान तुम छोटों और बड़ों को
दर्शन देते राह दिखाते क्यों केवल भक्तों को ?
तू जो है, वह ही जब मैं हूँ भेद नजर क्यों आता ?
मैं तेरे दर का भिक्षुक हूँ, तू जीवन-धन-दाता ॥
राम कृष्ण या बुद्ध मुहम्मद, कौन दूत है तेरा
ईसा या गाँधी से जग का पार लगेगा बेड़ा ? ॥
विविध दलों में भेद पड़ा आकाश और धरती का
कैसे किसे उचित मैं समझूँ खेद हटाऊँ जी का ॥
निराकार जब हो, भक्तों को दर्शन कैसे देते ?
मूर्त्तिमान् जब हो, कैसे जग आच्छादित कर लेते ?
ब्रह्मरूप या विष्णुरूप, या शम्भुरूप रहते हो ?
या हैं तीनों रूप तुम्हारे, या तुम अलग बसे हो ?

यह संसार अपार पयोनिधि, जीव वनस्पति सारे
प्रकृति बनाती है, या ये सब हैं कर्त्तव्य तुम्हारे ?

तन्तुवाय ज्यों अपने तन से तन्तु निकाला करता
अपनी ही उमंग में आ फिर खुद ही उसे निगलता।

इसी तरह क्या तुम से ही यह सारा भुवन बना है
तुम ही रक्षक हो तुम में ही लीन इसे होना है ?
अथवा पंचतत्त्व से सारी सृष्टि बनी यह न्यारी
तुम हो केवल कुम्भकार सा ही निमित्त गिरिधारी ?

जीव अलग है तुमसे, या यह भी है अंश तुम्हारा
क्यों तब तुम हो मुक्त आप, बन्दी यह बना बिचारा ?

पृथ्वी का आधार कौन है, सूर्य कहाँ हैं लटके
स्वर्ग मर्त्य पाताल लोक ये तीनों किस पर अँटके ?

यह क्यों सृष्टि बनाई तूने, क्यों यह गगन बनाया ?
क्यों नक्षत्र रचे ये अगणित,क्यों यह चांद उगाया ?

रात छिपी, दिन खड़ा हुआ, दिन छिपता, रात खड़ी है
चलती इनकी आँख-मिचौनी, क्यों चौबीस घड़ी है ?

कौन नियन्ता प्रातः-सायं सूरज-चांद उगाता
किसके कहने से यह बादल वारि सदा बरसाता ?

जब वसन्त आता है, जग में छा जाती हरियाली
सूखा ही रहता करीर क्यों, यह है बात निराली ?

होता है जब भोर, सभी प्राणी जगते खुश होते
ये उलूक क्यों मूक दुखित हो, निज-निज घर जा सोते ?

रात हुई, बिछ गई चाँदनी, कुमुद खिले, सुख पाते
ये क्यों हैं राजीव विचारे, मुरझाये शरमाते ?

ग्रीष्म तपा जाता है सब को, वर्षा आर्द्र बनाती
शीतकाल क्यों आता दुनिया जाड़े में ठिठुराती ?

अथवा यह संसार बना है नाट्य-निकेतन तेरा
धरती का है बिछा बिछौना, वारिधि का है घेरा।

तम्बू तना हुआ है ऊपर आसमान का नीला
द्वार-भाग के दीपक हैं रवि और चन्द्र चमकीला।

बिजली-बत्ती से झलमल करते अनन्त ये तारे
माया के सर्वत्र लगे पर्दे अनन्त हैं न्यारे।

तुम नाटक के सूत्रधार सबको नित नाट्य सिखाते
जीव सभी हैं अपना-अपना, तुमको पाठ दिखाते।

यह तमाम तालाब, नदी, सागर, पहाड़ औ' झरना
नाट्य-भवन के भूषण हैं ऋतुओं का और बदलना।

कर लेता जो ठीक उसे, जो पाठ जिसे तुम देते
बैठाते हो अलग उसे फिर काम न उससे लेते।

समझ गया सब बात और पर बाकी हैं दो बातें
दिखला रहे किसे हो यह तुम, क्यों हो और दिखाते ?

राहें दीख रहीं हैं अनगिन, इधर-उधर जाने को
कौन मार्ग पर सीधा है तेरे पग में आने को।

निरवलम्ब उस गज ने क्या कह नाथ ! तुम्हें था टेरा
पता नहीं क्या आवाहन, क्या वशीकरण है तेरा।

मुझे न तेरा विदित, तुझे है मेरा ज्ञात ठिकाना
निन्दनीय क्या दाता का दुखिये के घर खुद जाना ?

प्रबोधन

कुलिश-कर्कश-हृदय ! अब कब तक सुनाओगे व्यथाएँ ?
क्या न भूलोगे कभी निज चिर-सुहृद चिन्ता-कथाएँ ?

कर रहे आशा विफल हे मूढ़ ! निर्जन-बन-रुदन में।
खो रहे सञ्चित दृगों के अश्रु-निधि क्यों व्यर्थ क्षण में ?

दीनता है यमज-भगिनी बाल-चरित सखी तुम्हारी।
सङ्ग तेरा छोड़ अब किस ओर जाये वह बिचारी ?

है न तेरा घर कहीं दर-दर भटकना ही बदा है।
उसी दुखिये की मिली सहगामिता तुमको सदा है।

कामना - मृगतृष्णिका-कैतव तुम्हें संशयित करता।
स्वार्थ-सक्त-समाज- व्याध तुम्हें घृणा-शर-चलित करता।

ओ अभागे ! नगर-जनता देख तुमको दूर टरती।
सहज-नम्र सहायता भी हाय ! उलटी राह धरती।

आप रमणीरत्न लज्जा, है बनी पत्नी तुम्हारी।
दीनता-भगिनी झगड़ती, पर न वह हटती बिचारी।

छोड़ लज्जा को बहुत तुमने सुखद स्वातन्त्र्य चाहा।
पर न छोड़ा आज भी उसने, पतिव्रत को निबाहा।

अनिश कोलाहल मुखर है गेह रहने को न मिलता !
पर न तू नीरव-निलय-अभिलाष से तिलमात्र हिलता।

आज नीरस भी तुम्हें आहार दुर्लभ सा बना है।
छोड़ता पर तू न षट्-रस औ' फलों को ढूँढ़ता है।

मान लो मेरा कहा, संतोष पर विश्वास लाओ।
छोड़ दो परिणाम दुःखद मोह, मत जीवन गंवाओ।

देख दुनिया को सुखी तुम, हा! तड़पते व्यर्थ रहते।
मचलते, नैराश्य-व्रण की वेदनाएँ मूक सहते।

हैं तुम्हारे दूसरे ईश्वर, जगत भी दूसरा है।
तुम सरीखे सैकड़ों हत-भाग्य दीनों से भरा है।

धैर्य अब धारण करो चिर दिन हुए रोते तुम्हारे।
भूल जाओ करुण क्रन्दन के लगाना व्यर्थ नारे।

देख गलियों में तुम्हें कोई न मानो द्रवित होगा।
सब उड़ायेंगे हँसी ताली बजा यह फलित होगा।

आह! अब भी छोड़ दो निष्फल बिलखना बात मानो।
भाद्र की भीषण निशा को धीर! तुम निज आलि जानो।

सामने इसके दृगों के तिमिर-सागर-ज्वार आता।
और ऊपर कृष्ण लोहित क्रुद्ध वारिद व्यूह छाता।

निशानाथ समेट कर निज चन्द्रिका भूषण-वसन को।
छोड़कर नङ्गी उसे जाते चले अपने सदन को।

अश्रु-धाराएँ स्वयं गिरतीं, न शोकानल बहातीं।
मूक चिड़ियां भी नहीं निज-सान्त्वना-रुत चहचहातीं।

हाय वह बैठी अकेली, आप ही कुछ गुनगुनाती।
पर किसी को है कभी वह याचना-कृश-स्वर सुनाती।

ले इसीसे सीख मानस! मान सच्चा, याद रखना।
जल मरो, रोओ, किसी के पर न आगे हाथ रखना।

मान अब कितना कहूँ, बस मौन धारण कर जरा सा।
धीर हो छोड़ो सिसकना, मत कभी रहना डरा सा।

तूल-मृदुतरु-वल्लियों को कलभ पैरों से कुचलता।
एक दिन बँधता उसीमें और उसका वश न चलता।

देख प्याले में पड़ा जल, पी, पिपासा जन बुझाते।
काल गति से जलधि में पड़कर, उसींसे त्रास पाते।

अनल पड़ते ही सलिल बुझता, हटाया दूर जाता।
अनिल-बल पा, घर कभी कर खाक दर्प हटा अघाता।

शिशिर-कुण्ठित देख रवि को सामने सब हैं अकड़ते।
ग्रीष्म के जब संग आता, क्यों छिपे रहते न लड़ते ?

हो अधीन वसन्त के जग को समीर चँवर डुलाता।
लौटता हेमन्त जब, धर उग्र रूप हृदय कँपाता।

काल-चक्र विचित्र चलता, आप ही फिर वह फिरेगा।
दूर होंगे ताप, सुख-सामान से घर आ घिरेगा।

है गिरा जो आज, सम्भवतः वही फिर कल उठेगा।
नींद में अबतक पड़ा जो, क्या न आंखें मल उठेगा ?

एक सा रहता किसीका है न दैव सदा सहारा।
द्यूत यह—घबरा न, जीतेगा कभी जो आज हारा।।

★

सौन्दर्य

कौन

क्या हमारा खो गया है।

शान्ति थी कितनी हृदय में, था समझता तुच्छ जग को।
हाय! क्यों अन्धा हुआ, अब ढूँढ़ता मैं प्रेम-मग को।
क्यों विचित्र असीम परिवर्त्तन समझ में हो गया है?
रत्न का निधि है उदधि, यह जानकर गोता लगाया।
क्षार जल मुख में पड़ा, बस हाथ ख़ाली लौट आया।
कौन यह उन्माद का विष-सिक्त बाण चुभो गया है?
ढूँढ़ता वन में भटकता, पर नहीं निज ध्येय पाया।
क्यों मिले, जब है दृगों के सामने तमअन्ध छाया।
कौन मेरे मोद-पथ में दुःख कण्टक बो गया है?
प्रेम की जादूभरी वंशी यहाँ किसने बजाई।
तीर सी यह मर्मवेधक तान किसने है सुनाई।
या कहीं कोई छली यह सामने से रो गया है?
था उसे पहचानता मैं, पास मेरे जो खड़ा था।
या नहीं मैं जानता, उस समय धोखे में पड़ा था।
कौन था मेरी कुटी के सामने से जो गया है?
मैं न घबराया कभी था, दुःख कितना ही सताये।
थी नहीं चिन्ता मुझे चाहे बला से मृत्यु आये।
कौन मेरा धैर्य-राग वियोग-जल से धो गया है?
मैं यहाँ कब से खड़ा हूँ, क्या हुआ जाता दिवाना।
आह! क्या मैं रो रहा हूँ, गा रहा या प्रणय गाना।
जागता क्यों मैं अकेला, नींद में जग सो गया है!

★

रुदन

टूक-टूक हो चुका अरे ! अह जर्जर, हिय का कोना-कोना ।
चोट-थपेड़े नित कितनी ही मूक वेदनाओं के खाये ।
प्रणय-पीर की मृदु-वीणा पर, राग अनेक विरह के गाये ।
छोड़ो, मुझे न छेड़ो हँसकर, मेरा विभव तड़पना रोना ।।

सावधान हो गूँथ रहा था, गिन-गिन मैं जीवन की घड़ियाँ ।
टूट बीच में बिखर पड़ीं, मेरी वे अनुपम मञ्जुल लड़ियाँ ।
अब क्या उनका हो सकता है, फिर से पहली तरह पिरोना ?

बैठे घन निर्जन कानन में, प्रेमिक-प्रणय प्रतारित मन में ।
उठती है जो हूक मधुरिमा कितनी है उस मौन रुदन में ।
तुम अविरत हँसते रहते हो, तुम क्या जानो दुख का ढोना ?

रुदन ! हृदय तेरा कैसा है, जिसे सभी जन हैं ठुकराते ।
शीतल गोद उसे अपनी, अर्पित कर तुम हो धैर्य बँधाते ।
आह ! सखे तुम दृढ़ प्रतिज्ञ हो, कसे कसौटी पर के सोना ।।

आंसू ! कैसे भूल सकूँगा तेरा वह उपकार सयाने ।
मग्न विरह-सागर में होते हुए, रन्ध्र-शत-युक्त पुराने ।
मानस-तरि से असह-यन्त्रणा नीर उलचना भर-भर दोना ।।

ऐ ! अधीर क्यों हुए ? यही जग का सौदा है क्यों घबराते ।
तुम्हीं नहीं, हैं पथिक हजारों, ठगे गये ऐसे अकुलाते ।
रोलो जी भर फिर-फिर रो लो अब क्या और दूसरा होना ।।

★

२२

निर्वेद

उर होते क्यों तुम आज विकल !
आशाओं को निज देख विफल !

लख छवि अनूप तुम गये भूल, समझा तुमने है मृदुल फूल,
सेमल का रे यह विरस तूल !

समझा तूने जग सुख-निधि यह, तेरे ज्वर का न सुधौषधि यह,
क्षीरोद नहीं क्षारोदधि यह !

कहते थे तुम है रत्न खण्ड, यह तो जलता अङ्गार चण्ड,
सहना होगा अब ताप दण्ड !

छोड़ो अब से भी जग-कानन, रे माया-मृग का अनुधावन,
लाओ प्रभु पद में अपना मन !

★

नैराश्य

आओ गालें कुछ हिल-मिल !

सूखे से जीवन - तरु में
कलियाँ यदि हैं लग पातीं।
दो पल भी नहीं ठहर वे
हिय का अनुताप मिटातीं।

झड़ जातीं सब कुछ खिल-खिल !

सूने से मानस-नभ में कुछ तारे यदि उग आते।
नैराश्य तिमिर को वे भी, हैं नहीं मिटा कुछ पाते।

मिट जाते सब कर झिलमिल !

यह मृग-मरीचिका का था, स्वर्णिम मधुमय जो सपना।
वह भी इस व्यथितहृदय का, रह सका न हा! अब अपना।

जलना होगा फिर तिलतिल !

अब क्यों पछताता है ?

~~आंसू~~

आँसू क्यों निकल पड़े बाहर ? मूरख अब क्यों पछताता है ?
अपने भोलेपन पर जग को तू आप अरे ! हँसवाता है !
खोई कितनी निधियाँ तूने पड़कर झूठी आशाओं में।
सुनता है तेरा कौन, जगत अपनी मस्ती में गाता है।
मोती सी ये बूँदें तेरी मिट जायेंगी गिर धूलों में।
जिन पर तेरा है नाज बड़ा, जिनपर इतना इठलाता है।

क्या कहा ? विरह में प्रणयी के मैं हूँ तलाश में भटक रहा,
मिल जाय हृदय में छिपा कहीं, संसार वहीं बतलाता है।

भोले-भाले लौटो घर को, प्रणयी तेरा है इधर कहाँ ?
सूना तज निकल पड़ा हिय को, हिय आप विकल पछताता है।

तेरे प्रणयी के रहने को, यह एक हृदय पर्याप्त नहीं।
वह तो अलि-सा नित नूतन ही निज गेह ढूँढ़ता जाता है॥

२५

अतीत

जीवन के वे दिन गये बीत!

ज्योत्स्ना जब तन्द्रिल मादकता में खड़ी दूर मुसकाती।
जाग्रत निद्रा में मुग्ध मदिर आँखें कुछ समझ न पातीं।
उच्छ्वास विकल फिर प्रणय दग्ध अन्तर से रह-रह आते।
परिणत हो जलकण में, प्लावित कर पलक-तटों को जाते।
पा तेरी ही शीतल छाया, बनते वे हृदयोद्गार मीत! जीवन०॥

जगती जब रजनी में नीरव रहती बेसुध सी सोई।
आशा पगली आ जाती, चुप, कितने वर्षों की खोई।
कर नृत्य कल्पना के मीठे पर लगा सुनहले प्यारे।
बन परी दूर तक उड़, थक फिर वह गिनने लगती तारे।
तुम ही सहलाते, उसे बँधाते साहस गा-गा मधुर गीत!

बैठा अलाव को घेर वृथा, बुझ चुकी कब न उसकी आगी।
रीता कब का न हुआ प्याला, तजते न अधर पर अनुरागी।
मृग-मद कब का न छिना, केवल सौरभ के पीछे मँडराता।
लुट गई न कब वह मणि मेरी, मनियारा झूठे कहलाता।
हा वर्त्तमान भूलूँ कैसे कितना भी हो स्वर्णिम अतीत!

★

क्या करूँ ?

क्या करूँ यह हार ले अब ?
किन उमङ्गों से इसे किस भाँति निज कर से सँवारा।
म्लान होने से बचाया, अश्रु जल का दे फुहारा।
की प्रतीक्षा विकल, पर उफ़ ! वे नहीं ही आज आये।
सूख यह माला गई, आँसू वृथा मैंने बहाये।
क्या करूँ कब से छिपा यह हृदय का उद्‌गार ले अब !

थी न आशा, इस तरह मुझ से कभी वे छल करेंगे।
आज कह पहले निठुर पल में उसे वे कल करेंगे।
श्लथ हुआ था आह ! निश्चल प्रेम-बन्धन क्या न मेरा।
क्या कभी होगा न मेरी विरह-रजनी का सबेरा ?
मिट चुका आधेय ही जब क्या करूँ आधार ले अब ?

धैर्य की भी तो किसी के हाय ! सीमा एक होती।
प्रकृति भी तो ऊब अपने को किसी में विवश खोती।
वस्तु जो सौंपी उन्हें, अब मैं उसे किस भाँति तोड़ूँ ?
है सहारा किन्तु क्या वे हैं कहाँ जो हाथ जोड़ूँ ?
कौन सा पट बुन सकूँगा तन्तु ये दो चार ले अब !

☆

२८

मुसकाता ही रह जा

मानस मुसकाता ही रह जा !

आँसू के पीजा घूँट धीर ! हँसते-हँसते कह उसे नीर।
रोना मत कभी, सदा सा अपनी तान सुनाता ही रह जा !
है कौन कहाँ अपना तेरा ? किस भ्रम ने तुझे यहाँ घेरा।
जगती की चित्र-पटी पर तू, अभिनय नव लाता ही रह जा !
दुख की आँधी आये जाये, सुख की सरिता या लहराये।
मत रुक तू, देख न इधर-उधर, चुप पैर बढ़ाता ही रह जा !
कल भी आता बन आज कभी, कल बनते जाते आज सभी।
उकता न आज कल से तू भी, सम इन्हें बिताता ही रह जा !
सोना क्या जो दे बदल रङ्ग, हँसना क्या जो जाये न सङ्ग।
तू विश्व-निकष पर सदा मौन निजको कसवाता ही रह जा !
एक सा कसता जाता

आश्वासन

क्यों विकल पथिक रे मानस!
क्या समझ उतर आये तुम इस विषम नेह के पथ पर?
पाने इस पगडण्डी का क्या छोर कुतूहल-रथ पर?
हो नृपति रङ्क वा योगी, इस के आगे सब हैं सम।
बस, पार इसे करना है, होता पदाति अविचल-श्रम।
तज रहे सहज क्यों साहस?
क्या देख रहे मुड़ पीछे, सम्भव न लौटना तेरा।
गति साँप-छछुन्दर की ही, होगी, कितना अन्धेरा।
खिंच आये देख जिसे तुम, थी मृग-मरीचिका ही वह।
पर बढ़ो मौन आगे तुम, शायद मिल जाय कहीं वह।
बाधाएँ झेल चलो हँस!
छाले कितने उग आते पद-तल में? करो न रोष।
चोटें खा-खा गिर जाते! विधि को मत देना दोष।
है सूर्य अग्नि बरसाता! तपने दो निज मृदु गात।
सस्मित स्वागत कर इनका, मत कहो इन्हें उत्पात।
कसौटी पर आने को कस!
अभी मिलेंगे हिंस्र जन्तु, फिर भी न कभी भय खाना।
दायें-बाएँ देख न पीछे सीधे तुमको जाना।
हँसी उड़ायें, मुँह बिचकाएँ सभी, तुम्हें पर सहना।
बिना अन्त पाए निज-पथ का कुछ न किसी को कहना।
यह गहन ताप बन तू तापस!
तुम हुए अस्थि-अवशेष श्रान्त, पर बैठ न जाना मग में।
होगी स्यँ दूरी अवश्य, आगे की, दो हों डग में।
बुला न मलयानिल, बहने दो स्वेद-बिन्दु रग-रग से।
समय कहाँ इतना अधीर! काँटे न निकालो पग से।
पहुँचा ही चाह रहे बस!

★

30

आँसू

वेदना के तार आँसू !

सजनि ! गा अनुरोध के सङ्गीत कितने अधर सूखे।
राह में पलकें बिछा युग से हुए दृग तृषित भूखे।
धो सकेंगे ताप उनका क्या तुम्हारे ज्वार आँसू ?

ऊब एकाकी गये क्या रह वहाँ नीरव विजन में !
झाँकने हलचल-भरा संसार यह, निकले नयन में ?
दे सकेगा कौन तुझको किन्तु अपना प्यार आँसू !

वञ्चनाओं की विपणि जग, हृदय-धन मिलता कहाँ है ?
ढोल लगता बस सुहावन दूर का सच ही कहा है।
रह उसी तट पर न आ नादान ओ ! इस पार आँसू !

है अलीक सहानुभूति, विडम्बना का निपुण अभिनय।
पड़ न उसके पाश में मिट जा, मुझे लगता यही भय।
जीर्ण जीवन-तरणि के मेरे बचे पतवार आँसू !

गरल का यह घट, अमिय का आवरण केवल लगा है।
मचल पड़ते कह जिसे तुम प्रेम, वह मीठी दगा है।
चाह में इसकी उलझ, जीवन बना मत भार आँसू !

★

रोता क्यों रे !

रोता क्यों रे हिय ! तनिक ठहर ।

जल गया तूल-मृदु अन्तस्तल,
उग आये अमित फफोले हैं ।
जल के छल से—ऊपर से क्या,
बरसाये जाते ओले हैं ?
सह जा तू भी बन जा प्रस्तर !

यन्त्रणा न और सही जाती,
मधु-शाला भूल गयी भोले !
मधु के मिस से साकी ने क्या,
चुपके विष के प्याले घोले ?
पी जा हँस-हँस मत धीर मुकर !

सिसकी कैसी यह ? कहना क्या
हो चाह रहे अपनी पीड़ा ?
बन रङ्ग-मञ्च, करने दे सुख-
दुःख को अपनी अभिनय क्रीड़ा ।
दिखला न किसी को पर अन्तर !

सुख

सुख किसे लोग कहते हैं, मैंने यह कभी न जाना।
रोने को ही तो अपने कहता मैं आया गाना।

बादल घिर चिन्ताओं के अन्तर में छिपी पुरानी।
आँखों में मेरी पल-पल बरसा जाते हैं पानी।

मैं क्या जानूँ होता है कैसा निर्मुक्त सवेरा!
मिट पाया कभी न मेरे जीवन-से तम का फेरा।

अधरों में हों औरों के रहती हो लाली छाये।
मेरे तो यह मिलती है नयनों में ही दिन आये।

मिलते हों नित्य किसी को परसे सोने के प्याले।
मेरे तो यहाँ पड़े हैं दो-दो कौरों के लाले।

कहते, यौवन ले आता मस्ती का नव-नव प्याला।
पड़ मेरे हाथ सुधा भी तत्क्षण बन जाती हाला।

संसृति में औरों की हो उल्लास-हर्ष औ' आशा।
ताण्डव करती दुनिया में मेरी तो एक निराशा।

तन्त्री भी मानस-वीणा की टूटी आहत होकर।
भटकूँ अब क्यों मेले में पूँजी ही अपनी खोकर।

सौदा है नेह यहाँ का सब से अमूल्य सुनता हूँ।
मैं तो निज भग्न हृदय के बिखरे कण-कण चुनता हूँ।

था भला पथिक हे साथी! तुम मेरे पास न आते।
मुझ भाग्यहीन के पथ में हैं फूल शूल बन जाते।

★

मेरा क्या ?

देव ! निठुर तुम इस दुखिया के घर न आज भी आये !
नयन ले पग धोने को नीर,
प्रतीक्षा करते रहे अधीर ;
उलहनाओं का ले मृदु हार
खड़ा था अन्तर कब से द्वार ,
आँसू जो उमड़े बादल बन वे ही नभ में छाये !
आता था कोई जाता,
मानस मेरा बस तुम्हें सबों में पाता ;
आखें उसपर जब पड़तीं,
आशा तज बेसुध हो भू पर जा गड़तीं ;
चीख वेदना धीरज खो कहती हा ! वे भी हुए पराये !
चुपके से फिर तो कानों में,
कौन न जाने कह जाता ;
मुग्ध ! तुम्हारा इतने ही में
धैर्य कहां है बह जाता ?
अभी परीक्षाएँ कितनी तेरी होंगी दिन आये !
आना न आना तो हाथ है तुम्हारे,
छबि तो तुम्हारी पर साथ है हमारे ;
भाग भी तो सकते नहीं भाग कहाँ पाओगे;
बतलाओ तो पूछूँ मैं, भाग कहाँ जाओगे ?
छाया के छल ही जादू में तुम हो बन्दी गये बनाये !
अभिलाषाएँ कितनी प्यारी चुन-चुन मैंने कुटी सँवारी ,
कहाँ-कहाँ से ढूँढ़ रखी यह भेंट सभी तुमपर ही वारी; —
मेरा क्या ? मैं तो आदी हूँ जाने का दिन रात सताये !

★

३४

छेड़ मत साथी !

छेड़ मत साथी ! हृदय का आज टूटा तार मेरा,
सुन सकेगा विकल उर का तू नहीं उद्गार मेरा।

पूछ मत किसकी प्रतीक्षा में नयन ये आज रोते,
पोंछ मत आँसू उपायन-हार नव ये हैं पिरोते।
क्यों गिराऊँ आर्द्र पलकें सामने जो वह खड़ी हैं,
देखता ही मैं रहूँ नित, जा तुझे उहँ ! क्या पड़ी है ?

तोड़ मत, रहने तनिक दे स्वप्न का संसार मेरा॥

हँस न, औरों की तरह सस्ता नहीं उन्माद है यह,
राशि जीवन के सुखों की दे, लिया अवसाद है यह।
डूबने ही दे मुझे, मत निज करों का दे सहारा,
वेदना की वीचियों से खींच मत मुझको किनारा।

तू न जाने, विरह-वारिधि रत्न का भाण्डार मेरा।

जागते सोते, जगह सब, बैठते उठते निरन्तर,
मोहनी छवि वह सदा ही देखता है तृषित अन्तर।
मौन एकाकी मुझे दो मुस्कराने और रोने,
याद को उसकी मधुर पलभर कभी प्रिय! दो न खोने।

छीन मत यह आखिरी उसका दिया उपहार मेरा।

★

नेह की राह

राह नेह की पीर भरी रे ।
आलि ! चली चल सम्हल-सम्हल इस असि-धारा पर धीरे-धीरे ।

विरह-वह्नि में तिल-तिल जलना,
अश्रु-तुहिन में घुल-घुल गलना ।
अवधि-सिन्धु का तरना खे कर,
मृग-मरीचिका-तरल तरी रे ।

हँस-हँस मरना रो-रो जीना,
हार-जीत सब चुप-चुप पीना ।
करे न कटु उपहास कहीं यह,
कुटिल समाज निठुर प्रहरी रे ।

सतत साधना ही सरबस है,
सिद्धि वृथा है, ऊँह ! नीरस है ।
प्रीतम को नित तृषित खोजने
में सुख पाती प्रकृति-परी रे ।

३५

जाने दे

जाने दे अब जाने दे ।

मत छेड़ मुझे, नीरव प्रान्तर में चुप-चुप पैर बढ़ाने दे ।
तुम कहो राज-पथ मेरे तो पैरों में हैं चुभ रहे उपल,
ये सौध सुखद हों भले तुम्हें, मेरा तो दम घुटता प्रतिपल,
हलचल की दुनिया से सुदूर सूना संसार बसाने दे ।

हो चुके अस्त रवि फैल रहा तम-तोम दिशाओं में नितान्त,
तारे सारे टिम-टिम करलें, होगा न नष्ट पर कभी ध्वान्त,
शशि की शीतल किरणों को अब अपना अनुभाव दिखाने दे ।

सदियों से अलि करते आये कलियों का सस्मित अधर-पान,
कितनी स्मर के शर बनीं, और कितनी प्रेमिक के प्रणय-दान,
सौरभ अब इन्हें लुटा जग को अपना तन आप मिटाने दे ।

मत पूछ इधर क्यों निकल पड़ा, किस ओर कहाँ मैं जाऊँगा,
गुन गुन करता मन ही मन बस, मालूम नहीं क्या गाऊँगा,
गिन-गिन घड़ियाँ अब जीवन की युग-युग सम मौन बिताने दे।

★

कैसा अनुराग ?

यह कैसा अनुराग सखे !

बनते तुम माया-मृग जब मैं विरह-विकल ढिग जाता
घर निराश चल देता जब, तेरा स्वर सदय बुलाता
क्यों अलाप बैठे यह मुझसे आँख मिचौनी-राग सखे !

विरह-वेदना व्यथित अंग हैं, बने धूलि-धूसर से
तुम रक्ताभ-अश्रु-मिष रँग हो डाल रहे ऊपर से
खेल रहे क्यों अनिश अदय मेरे जीवन से फाग सखे !

मधु का किसलय-दान द्रुमों को समझ विपिन में आया
विरस, विमन, निर्दल करीर ही पर लख मैं अकुलाया
थी तलाश कोयल की, मुझको मिला यहाँ पर काग सखे !

मुझे न भाता महलों में भी रहना तुमसे दूर
तुम घनश्याम, कुटी ही कानन, मैं हूँ मत्त मयूर
छल सकते न मुझे तुम दिखला कल्प-वृक्ष का बाग सखे !

देव ! बताओ कभी न, तेरी शपथ, मुक्ति की राह मुझे
नहीं सुधा का लोभ, न षट्रस की है कोई चाह मुझे
मुझे चाहिये केवल तेरे सँग सत्तू औ साग सखे !

अभी बेकली मिटी न उर की, अभी न मधु-का दान मिला
अभी न छक कर मुझे तुम्हारी रूप-राशि का पान मिला
अभी न गाओ निठुर ! विरह का सन्ध्या समय विहाग सखे !

पड़े फफोले जो मानस में, सह तेरा उत्कट अनुताप
नेह-नीर से सदय बुझाओ उर का विरहानल-संताप
है न दूसरी दवा, तुम्हीं हो मलहम उसके आप सखे !

★

पहली भेंट

तुम तो करते मुझे प्यार थे ।
पहली भेंट मधुर कितनी थी प्रिय तब तुम कितने उदार थे !
पल में ही मुझ से वियुक्त हो मुँह कितना तुम म्लान बनाते,
कभी रूठने पर मेरे, साथी, तुम कितना अश्रु बहाते,
सच, आँसू वे क्या उधार थे ?
मुझे पार्श्व में पाकर तुम तो भूल सभी दुनिया जाते थे,
मधुर-मधुर बातें कर मुझसे उफ ! तुम कितना सुख पाते थे,
क्या वे सब कृत्रिम दुलार थे ?
वह आकुलता आज शान्त क्यों, अरे कहाँ उपचार गये वे,
स्नेह-सरित् सूखा क्यों ? भूले सन्बोधन नित नये-नये वे,
क्या वे सब के सब असार थे ?
वस्तु सभी जगती की नश्वर, विधि-विधान यह जान रहा था,
पर पागल मैं हहा ! प्रेम को जग से ऊपर मान रहा था,
क्या मेरे अनुचित विचार थे ?

★

मेरे जीवन

मेरे जीवन, मेरे निधान !

जीवन उपवन के नव वसन्त !
मानस-मानस के मृदु मराल !

अन्तर-नभ के हे शारद-शशि
कामना-लता के आल-वाल !

मतवाले मनगज के अलान !

तेरा वियोग ही बना आज
मेरे हित निविड़ अंधेरा है।

तेरी सजीव स्मृति में ही प्रिय
इस तम का छिपा सबेरा है।

मुखरित पीड़ा ही विहग-गान !

सौहार्द-वेलि को जिस उर में
है दिया स्थान, सम्मान सभी

दृगजलवर्षण से सींच नित्य
होने न दिया है म्लान कभी

अब कैसे उसका तजूं ध्यान ?

वरदान तुम्हारा यह मुझको
है निरा स्फूर्त्ति का प्याला ही।

तुमने इस मधु-घट में भेजा
है एक उग्र नव हाला ही।

करता नित जिसका मुदित पान!

भूला रहता स्वर लहरी में,
इस की ही प्रिय! संध्या-प्रभात।

सुख दुख दोनों को एक किया
इसने दे अविरत अश्रुपात।

इसकी मुरली सी मधुर तान!

भव की तमिस्र रजनी में जो
आलोक मुझे नित देता है।

उत्ताल तरङ्गो में निर्भय
जीवन की तरणी खेता है।

लौटा मत वह अवलम्ब-दान!

माना मेरी यह नादानी
सच नहीं, निरा यह सपना है।

अविवेक-निशा का भ्रम कोरा
फिर भी यह मेरा अपना है।

प्रिय है न मुझे इसका बिहान!

★

क्या मतलब ?

वे मेरे हैं मैं उनका हूँ, दुनिया को इससे क्या मतलब ?
मैं पागल हूँ, फिरता जग में पागलपन का अभिशाप लिये
मैं दुखिया हूँ, दुख का सागर जाता हूँ अपना आप पिये,
मैं रोता हूँ वे हँसें भले, दुनिया को इससे क्या मतलब ?
मैं धूप दीप नैवेद्य लिये कब से न खड़ा हूँ पूजन को
हूँ धैर्य बँधाता ही जाता पल पल निराश होते मन को,
आये वे और नहीं आये दुनिया को इससे क्या मतलब ?
चिर से उनकी स्मृति की अविरत जपता ही मैं आया माला
सच माना, पड़ा न था ऐसे निष्ठुर से जीवन में पाला,
निर्दय हों वे या सदय किन्तु दुनिया को इससे क्या मतलब ?
स्वीकार न हो अर्चना उन्हें मेरी, मैं तनिक न उकताऊँ
पहुँचे उनतक न पुकार भले मेरी, पर मैं गाता जाऊँ,
मैं हूँ सुजान या मूर्ख निरा दुनिया को इससे क्या मतलब ?

★

५२

विदा दो

प्रिये ! जा रहा दूर विदा दो !

हम दोनों ही दूर देशों से चलकर आये राही
अपना वश क्या ? हम तो उस मालिक के निरे सिपाही।
कहीं काट ली रात बनाकर सुन्दर एक बसेरा
अब मैं अपनी राह जा रहा देखो हुआ सबेरा।

एक बार केवल मुसका दो !

मदिर स्पर्श से तेरे आई मुझे शीघ्र ही नींद कड़ी
मुग्धा तुम भी हँसी न बोली लज्जा में रह गयी मड़ी।
अब मैं किधर कहाँ जाऊँगा तुम जाओगी किधर कहाँ
क्या जाने आगे की रजनी बीतेगी किस तरह कहाँ ?

अरी ! आज संकोच मिटा दो !

अरे ! सिसकती क्यों ? लो, माया मोह बढ़ गया इतना ?
बहा न आँसू, होगा इनका वहाँ मूल्य ही कितना ?
प्रभु का है आदेश, याद कर, होगा हमें बिछुड़ना
अभी भूल जाओगी, पगली, पल में कल का जुड़ना।

हँसो स्वयं औ मुझे हँसा दो !

☆

क्यों

प्यार क्यों करता बता दूँ ?

चाँद मुरझाता निशा के शोक में क्यों रंक हो कर
विरह में जलता सदा रवि क्यों उषा का अङ्क खोकर
बिछुड़ मलयानिल लता से आह क्यों भरता बता दूँ ?
प्यार क्यों करता बता दूँ ?

नाचने लगता शिखी खुश हो घटा क्यों देख कारी
मीन क्यों जल-वीचि में हो मगन नित रहता अनारी
चाँदनी की चतुर चातक चाह क्यों धरता बता दूँ ?
प्यार क्यों करता बता दूँ ?

हरिण मुरली सुन मचल पड़ता बधिक से क्यों न डरता
कमल-कलिका में रसिक अलि कैद क्यों होता न टरता
सखि ! शलभ दीपक-शिखा को चूम क्यों मरता बता दूँ ?
प्यार क्यों करता बता दूँ ?

★
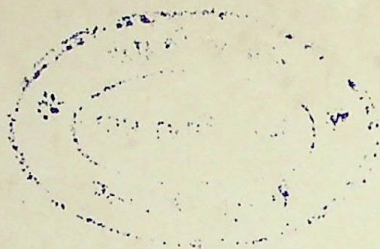
जिसे तुम प्यार करोगी

सजनि ! जिसे तुम प्यार करोगी !
सुधबुध बिसरा देगा वह जिसके दिल पर अधिकार करोगी ।
चाँद पड़ा लावण्य-सिंधु में, कमल खिला था हेमलता पर
रमणी-कृति या परम नमूना, परी अवतरी या वसुधा पर
निकल पड़ोगी जिधर, उधर तुम मनसिज को साकार करोगी ?
सजनि ! जिसे तुम प्यार करोगी !
मचल उठेगा वही, गीतमय जो पायल झंकार सुनेगा
दौड़ पड़ेगा वह, जो तेरी वीणा-मधुर पुकार सुनेगा
मुस्का भी दोगी तो शत शत युवकों का उपकार करोगी !
सजनि जिसे तुम प्यार करोगी !
कट जायेगा वही वहीं, जिस. पर चितवन-विषबाण गिरेगा
लुट जायेगा वही वहीं जिससे चितवन-वरदान फिरेगा
हो जायेगा धन्य धन्य जिससे तुम आंखें चार करोगी !
सजनि जिसे तुम प्यार करोगी !
वह न धरेगा पैर धरा पर जिसे जीवनाधार वरोगी
तर जायेगा वह सच, जिसके जीवन का पतवार धरोगी ।
बसा एक का घर कितनों का तुम उजड़ा संसार करोगी !
सजनि जिसे तुम प्यार करोगी !

★
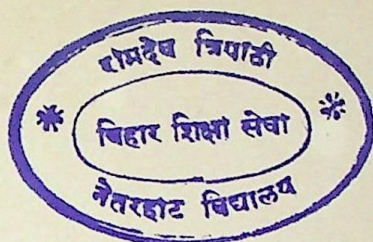
तुम्हारी कीमत

आज तुम्हारी कीमत जानी !

मूरख मैंने तुम्हें गँवाकर ही तेरी महिमा पहचानी !

इन्दीवर से नैन, इन्दु सा मुख तेरा तज किसे दुलारूँ ?
कमल-सुकोमल कर-किसलय वे तेरे कैसे प्रिये बिसारूँ ?
सूख सकेगा क्या जीवन भर इन भींगी आँखों का पानी !

रति की री उपमान ! कहाँ प्रतिमान विश्व में तेरा पाऊँ ?
ढूँढ़ कहाँ से सरल मधुर वह नेह तुम्हारा अब मैं पाऊँ ?
निर्दय रे दुर्दैव ! पलट दे अब भी हा ! मेरी नादानी !

अरी कहाँ तुम ? कहाँ बिचारी यह ? कैसा दोनों में पटतर,
पत्थर पा पारस खोने की व्यथा भुलादे कैसे अन्तर,
स्मृति में ही तेरी अब तो ये घुल-घुल प्राण मिटेंगे रानी !

★

४५

कैसे
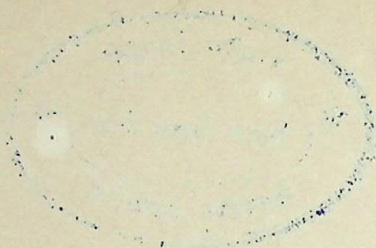
तुम्हें कैसे दूँ अपना प्यार ?

विरह का सह लूँ तीखा तीर,
सुखा दूँ यह आँसू की धार।

मिटा दूँ आकुल उर की पीर,
कहाँ मन पर इतना अधिकार ?

उसी का दृग, ये करते ध्यान,
उसी को अन्तर रहा पुकार।

गिरा भी करती उसका गान,
इन्हें समझा कर माना हार !

तड़पते हैं मेरे अरमान,
मचा मानस में हाहाकार।

निकलने को व्याकुल हैं प्राण,
सुनूँ क्यों तेरी करुण पुकार ?

भुला दूँ उसकी मीठी याद,
प्रणय कर लूँ तेरा स्वीकार !

अरे गंगा का लेकर स्वाद,
कहो, क्यों पीऊँ सागर खार ?

★

निंदिया रानी

तुम मत रूठो निंदिया रानी !

इस असमय में साथ न छोड़ो तुम तो मेरी सखी पुरानी।
छलनाओं की खीझ, पराजय की चुभती सी पीर मिटा दो
अरे ! सामने से इस पापी दुनिया की तस्वीर हटा दो
भुला सभी दे बीती बातें जीवन की कटु करुण कहानी !

आज पिला प्याले पर प्याले मदहोशी ला ऐसी गहरी
जागृति के कलकल को ढक दे निद्रा की मीठी स्वर-लहरी
मुकर अभी मत, तनिक और दे, तुम तो साकी अवढर दानी !
उसे देखने को आकुल हो अश्रु बहाता रहता अन्तर
अट्टहास कर जग कहता है यह सब है झूठा आडम्बर
दूती बन, चुपके सपने में उसे बुला दे अरी सयानी !

★

अभिशाप

जिसे समझा मैंने वरदान अरे ! निकला वह तो अभिशाप !
पावस की रजनी, दुर्गम वन, साथी साथ न पथ ही देखा,
बेसुध दौड़ पड़ा प्रकाश की पा समीप ही धुँधली रेखा,
जिसे समझा नगरी का दीप, लुटेरों का रे वह छल-पाप !
झुलस रहा तन विरहानल से, है कोई उपचार न शीतल,
एक चमकती माला सी लख दूर, पड़ी मन में थोड़ी कल,
जिसे समझा फूलों का हार, अरे निकला वह विषधर साँप !
तीखी प्यास लिये अधरों में भटक रहा था मैं विह्वल सा,
आशा कुछ बँध गई, सामने पड़ा दिखाई बहता जल सा,
जिसे समझा सरिता की धार प्रखर वह मरु में रवि का ताप !

★

आज भी

जलता रहता हृदय आज भी।

निज मानस मथ मैंने तुझको स्नेह-सुधा का दान दिया था,
सरल सुहृद सुख-दुख का साथी सच्चा अपना मान लिया था,
किन्तु तुम्हीं ने मुझे मिटाने को फैलाया निठुर व्याज भी।

बातें मधुर बनाकर कितनी, तुमने जीता मेरा मन ही,
सौंप दिया था तेरे कर में मैंने तो अपना सब धन ही,
बता, मुझे ही ठग लेंने पर, करता था तू अरे नाज भी?

तेरे ही कन्धों पर रख निज हाथ, बढ़ रहा था मैं पथ पर,
मुझे भरोसा था तेरी खाई कितनी ही बार शपथ पर,
मुझे गिरा गहरी खाई में सखे! न आई तुम्हें लाज भी।

बहा जा रहा था सागर में अरे! भूल मैं कूल किनारा,
तट पहुँचाने का मुझको तू स्वयं लगाता आया नारा,
पार लगाना दूर, डुबोया तूने तो मेरा जहाज भी।

★

ताण्डव नृत्य

नियति का निर्मम ताण्डव नृत्य !
ऐसी क्षणभंगुरता परिवर्त्तन जग में इतना निर्वेद,
आज और कल में हो जाता हाय ! यहाँ पर इतना भेद !
कल को मैं ही महाराज था आज बन गया भृत्य !
बना न कुछ भी मेरे बल से, पड़ी रह गई मति बेकार,
विफल हुई सारी सहायता, सुहृदों का वह स्नेह अपार,
काम न आये, जो मैंने थे किए पुण्य के कृत्य !
मेरी ऐसी दशा ! न तुम में आया करुणा का संचार,
भला-बुरा का भी तो तुमने किया न कुछ भी अरे विचार,
निरपराध ही मुझे कुचलने में था क्या औचित्य !

★

निष्ठुर चक्र

निष्ठुर चक्र नियति का चलता !

अरे काल विकराल गाल में अपने सब को यहाँ निगलता।
रुचिर चाँदनी का चंदोवा चन्द्र चतुर्दिक जो फैलाता,
बरसा अपनी सुधा-धार जो वसुधा की है तृषा बुझाता,
होता वह आहार राहु का, यही हाय है न्याय कुशलता ?
जिसकी प्यारी कलि वसन्त में विकसित हो इतनी इठलाती,
जिसके सौरभ में विभोर हो बाल भ्रमरियाँ सुमधुर गातीं,
आज माधवी-कुसुम अरे ! वह वर्षा में कैसा है गलता !
कल जिसकी कमनीय कान्ति से मलिन कलानिधि भी हो जाता,
अरे सुकोमल जो फूलों सा पथ में आतप से कुम्हलाता,
मूक हुई करुणा देखो, वह मुख है आज अनल में जलता !

★

आज

अरे आज मैं तुम्हें जलाता !

इसीलिए क्या हमने तुमसे जोड़ा था दम्पति का नाता !
काश ! पाश में शंकित ही हो तुम्हें बाहु मेरे जो कसते,
बनने को उपधान तुम्हारे रहते थे जो अनिश तरसते,
वे ही तेरी चिता सजावें, अरे आज है बाम विधाता !
हाय, कुसुम-कोमल तन जो था कपड़ों से भी छिल छिल जाता,
मृदुल तूल के ललित गलीचे पर आराम नहीं था पाता,
उसे कठिन काठों पर रख कर मैं कितना हूँ नेह निभाता !
सुधा-मधुर जिस अरुण अधर पर अधर सदा डरता ही धरता,
निज-दशनों का क्षत भी देकर जिसमें पहरों अरे सिहरता,
निठुर आज मैं शिला-शून्य हो अरे उसीमें आग लगाता !

अमा

अमा का राका में भी वास !

सौरभ मधुर बिखेर रहा जो अपना जगती में अविराम,
जहाँ नीम के तरु भी रहकर बिकते चन्दन के ही दाम,
उसी मलय गिरि पर लेता है विषधर सर्प निवास !
सुधा बरस कर जो जीवों का ताप दिवस का हर लेता,
धवल दूध सी किरणों से रजनी के तम को धो देता,
उसी इन्दु के विमल अङ्क में चिर कलङ्क का भास !
स्वयं जहाँ से लक्ष्मी निकलीं, कौस्तुभ सी मणि का जो घर,
जिसका पी पीयूष बन गए सभी असुररिपु अजर-अमर,
क्षीरसिन्धु है वही हलाहल का भी तो आवास !
जिस गुलाब की लाली लख ये आँखें युगल जुड़ा जातीं,
सुरभि केतकी की जिस मादकता समीर में है लाती,
अरे उसी में काँटों का भी होता सहज विकास !
रूपवान कामी हैं, विषयी युवा, भोग-रोगी धनवान,
भूप भयातुर, बुद्धिमान हैं कुटिल, दर्प-दूषित बलवान,
यह अपूर्णता ही तो जगती का वास्तव इतिहास !

★

सपने में भी

अब सपने में भी आती हो !

जीवन भर ललचा कर न थकी अब मरकर भी ललचाती हो !
मैं कभी फूल चुनता तो तुम कानों में उन्हें सजा लेती,
मैं कभी गुनगुनाता तो तुम छम छम मञ्जीर बजा देती,
पेड़ों पर चढ़ छिपता मैं तो तुम नीचे अश्रु बहाती थी,
अन्योक्ति इधर मैं कसता तो तुम उधर खड़ी मुसकाती थी,
जीवन भर हाथ बढ़ा न सकी अब मर कर गले लगाती हो !
तुम से कुछ कहने सुनने को रह गया तरसता यह अन्तर,
मैं रहा तड़पता पर तेरा खुल पाया कभी न मौन अधर,
तेरी आँखों की लाली में मैंने तो पायी व्रीड़ा थी,
सच वह असफल अभिलाषा की तेरी क्या उमड़ी पीड़ा थी,
जी कर तो कभी बुला न सकी, अब मरकर सेज सजाती हो !
जब मैं बेसुध सोया रहता चुपके आ मुझे जगाती तुम,
मैं क्या जानूँ शृंगार अरी ! मुझ से वेणी बँधवाती तुम,
कुछ बोल न पाऊँ मैं इससे माँ को ला पास बिठाती तुम,
यह नेह निभाती या मुझको तिल तिल कर और जलाती तुम,
जीकर तो कभी हँसा न सकी, मरकर भी मुझे रुलाती हो !

★

सपने की रानी

री सपने की रानी !

कहो कहाँ से आ जाती तुम नित चुप चुप अनजानी !
मैं न तुम्हारा प्यार ले सका, मैं न तुम्हें निज प्यार दे सका,
खिंची अमिट उर में पर तेरी स्मृति की मधुर निशानी !
मुग्धोचित बर्त्ताव तुम्हारे, सरल-सरल वे हाव तुम्हारे,
मूक याचना हाय ! न तेरी तब मैंने पहचानी !
आँखमिचौनी दोल्हापाती, फँस गिरती, साकूत लजाती,
दाँव झगड़ ले लेती थी तेरी अधखिली जवानी !
घुल घुल पाली लोक लाज भी, किंतु न भूली मुझे आज भी,
कौशल से किस साध रही मिलने की साध पुरानी !
दुश्चिंता पीड़ा से रोता, थक दिन में निशि में जब सोता,
सहलाती तुम लिए चांद सी छवि, कोयल सी बानी !
तुम जा बैठी इंद्र लोक में, जर्जर तनु मैं रोग शोक में,
पथ सूना, पाथेय शेष बचपन की करुण कहानी !
न छेड़खानी, न कुछ उलहना, न कुछ इशारा, न मुँह से कहना,
मुस्काती बस देख एक टक रोक दृगों का पानी !

★

सपने का अभिसार

मैं क्या जानूँ क्या है क्यों है, यह अपने का अभिसार सखी।
भूषणविहीन संस्कार रहित वह देह-लता मुरझाई सी,
बिखरे कुन्तल चिर-म्लान अधर, आनन-कलिका कुम्हलाई सी,
यह सकरुण नीरव उपालम्भ या अकपट साक्षात्कार सखी।
उत्सुक अवहित अन्तस्तल मेरा परख रहे से नैन कहाँ!
चातक से मित सब कुछ कहते से मधुर सरल वे बैन कहाँ,
शैशव यौवन की मिलन-व्यथा या मेरा शंकित प्यार सखी।
क्या सहज नेह का सौरभ छाया में भी प्रतिबिम्बित होता,
लोकान्तर में भी सूक्ष्म देह क्या ममता बन्ध नहीं खोता,
क्या प्रेम सरणि में नहीं कभी संभव अनन्त है हार सखी।
संगम में है कुछ लोक-लाज, कुछ लघुता है, कुछ पाप-भीति,
सात्विक रति का उल्लास विरह में, काय-विजय की भी प्रतीति,
सम्बन्ध अपार्थिव में आता क्या कभी न चंचल ज्वार सखी।
छाया से ललचाया मुझको, जब मैं भूखा था काया का,
भौतिक तन तेरा मेरे हित बन गया कनक-मृग माया का,
पञ्जर-विमुक्त होते पहुँची सर्वस्व लिए उपहार सखी।
यह मधुर व्यथा सुख है वा दुख निश्चय न कभी कर पाता मैं,
कटु-मधु-निर्मित आपानक सा पी अपनी प्यास बुझाता मैं,
करुणा ही क्या ब्रह्मास्वादोपम अखिल रसों का सार सखी।
याचक तन वंचित ही छोड़े, तू जा बैठी अवचेतन में,
तादात्म्य-रूप था दान मधुर, या दंड निठुर तेरे मन में,
गंगा यमुना तट पर बिछुड़ीं दो—रस केवल मँझधार सखी।
भौतिक शरीर का आश्लेषण शिव-शिवा-युगल में लक्षित है,
सुस्पर्श गाढ़ आलिंगन राधा-कृष्ण-कथा में रक्षित है,
द्वय-भिन्न अर्द्ध-नारी बनने का तेरा ही अधिकार सखी।

★

निष्पाप मिलन

निशा का तंद्रिल नीरव अन्त,
चांद का रजत शुभ्र मृदु हास ।
सुमन रज शिथिलित मलय समीर,
नाद झिल्ली का थका उदास ।
नींद की मीठी अभयद गोद,
स्वप्न का स्वर्णिम वह संसार ।
शुद्ध सात्विक अनुभूति-प्रवाह,
मोद का आस्वादन अविकार ।
स्नेह का मुख पर अंकित ज्वार,
अधर में मृदुल मन्द मुसकान ।
दृगों में लिए कुतूहल भाव,
हृदय में पूर्ण आत्म-सम्मान ।
न जाने कब का संचित नेह,
पार्श्व में आ बरसाती मौन ।
स्वप्न में शील-पूत अभिसार,
सजाती प्रेयसि हो तुम कौन ?

बैठती तुम इतनी ही दूर,
कि लगता वह मेरा उत्संग।

कि साँसें छू तेरी सामोद,
पुलक-कण्टकमय होते अंग।

किन्तु मर्यादा का निर्वाह,
भूलती कभी न तुम पल एक।

जुड़ा जाते हैं दोनों हृदय,
न शंकित होता तनिक विवेक।

ढालते मधु से दीर्घ कटाक्ष
अनाहत नाद मधुर आलाप।

शान्ति बरसाता सा परिहास,
मिलन संभव इतना निष्पाप ?

नहीं यह स्वप्न, न कभी सुषुप्ति,
नहीं यह जड़तामय कैवल्य।

मिला गोलोक खंड क्या दान,
सकल पुण्यों का सब साकल्य।

बता दो तुम्हीं, कौन वह भुवन,
कहां तुम सी परियों का वास ?

बाल सखि, तुम्हें हुआ किस भांति,
सुलभ उस जग का सहज विलास।

बदल लो कैसा भी तुम रूप,
बना लो कैसा भी तुम साज।

न मुझसे रह सकती अनजान,
न मुझसे छिप पायेगा राज़।

गई तू देश काल से दूर,
मिला हो तुम्हें भले स्वर्लोक।

न फिर भी मुझको देखे बिना,
तुम्हारा मिट पायेगा शोक।
कौन कहता है हम हैं दूर,
कौन कहता हम झूठे मीत ?
कौन कहता है अब तो हुआ,
हमारा प्रेम-प्रसंग प्रतीत।
हमारी अन्तः नीरा प्रीति
हमारा अभिमत सूक्ष्म शरीर।
नहीं कर पाया हम को विलग,
कभी यह जन्म-मृत्यु-प्राचीर।
तुम्हीं वह थी, यह भी हो तुम्हीं,
मिलन की तेरी नव-नव रीति।
धरें हम चाहे जैसी देह,
अमर है किन्तु नेह की नीति।

★

५०

सपनों का संसार

औरों के हित संसार भले यह सपना हो,
मेरा तो सपनों का ही है संसार बना ।
जिस मानस में उसकी स्मृति प्रतिपल ताजी हो,
जिस दृग-पट पर पग-पग वह आभा साजी हो,
जग जगह वहां किस भांति बना कब पायेगा
तद्भाव प्राप्त को कैसे कौन मिटायेगा ?
औरों का चाहे प्यार दर्द में परिणत हो,
पर दर्द आज मेरा परिणत हो प्यार बना ।

रोगी बन उसकी परिचर्या का जो गाहक,
वह रोगमुक्त होना चाहेगा क्यों नाहक ;
जो जन्म-जन्म उन चरणों का अनुरागी है,
वह मोक्ष नहीं चाहता कदापि विरागी है ;
कर्त्तव्य नहीं, अधिकार सिर्फ मांगे दुनिया,
मेरा तो है कर्त्तव्य स्वयं अधिकार बना ।

है विश्व उन्हें प्रिय, हालत जिनकी मनचाही,
कारण-शरीर में मग्न ज्ञान के जो राही ;
है आत्मसात् करने का आग्रह भोगी का,
कुछ और लक्ष्य स्वेच्छा से नित्य वियोगी का ;
ऋषि-मुनि साकारों को भी मानें निराकार,
पर निराकार ही मेरे हित साकार बना ।

★

साथी

रम रही रग-रग में मेरे है तेरी तस्वीर साथी।
कान सुनने को विकल पीयूष-वर्षी तान तेरी,
खोजती आंखें तुम्हें दिल में बसी मुस्कान तेरी,
काश ! गर मैं भी दिखा पाता कलेजा चीर साथी ।
दैव ने चकमा दिया आँखों में मेरी धूल झोंकी,
आ तभी विश्वासघाती ने नुकीली कील भोंकी,
काश ! कोई मेट देता प्यार से वह पीर साथी।
ऊफ ! अरुन्तुद वंचना से जल रहे हैं प्राण मेरे,
छिन गई सारी खुशी सब भुन गये अरमान मेरे,
काश ! कोई पोंछ देता आ दृगों का नीर साथी।
त्याग की मरजाद खोई भोग का भी रस न पाया,
मिट गया मैं पर बसाने का किसी को जस न पाया,
काश ! लिख जाता कोई फिर से मेरी तकदीर साथी।
चोट ऊँची वीचियों के बीच कब से सह रहा हूँ,
प्यार की पतवार खो मँझधार में चुप बह रहा हूँ,
काश ! कोई आ लगा देता तरी उस तीर साथी ।
जा रही तूफान से भी तेज गाड़ी काल की है,
पर किसे चिंता गिरे अनमोल मेरे माल की है,
काश ! कोई रोक देता खींचकर जंजीर साथी।

★

उरांव-बाला

पवन मन्द, खग-मुखर दिशाएँ, थी प्रभात की वेला,
विचर रहा उद्यान बीच मैं चिन्तन-मग्न अकेला।
ठिठक गया पल एक, सामने कौंधगई बिजली सी,
विस्मय-हर्ष-विमूढ़, अयाचित सुर-सम्पदा मिली सी।
चली चकित-मृग-दृगी किशोरी निकल एक कोने से,
वनदेवी जग खड़ी हुई ज्यों अभी तृप्त सोने से।
श्याम देह, परिधान अरुण, द्युति दीख रही थी ऐसी,
नव-किसलयवलयित तमाल वल्ली लगती है जैसी।
अंचल पट कटि में लपेट बढ़ती थी तनिक उछलती,
वीर वेश धर कौतुक-वश शृंगार-मूर्त्ति ज्यों चलती।

एक वार अवलोक मुझे उसने झट दृष्टि गिरा दी,
लक्ष्य साध पिस्तौल तौल मानों बस घुँड़ी दबा दी।
आहत भी होकर उस चितवन से मैं हुआ मुदित ही,
मदिर मधुरिमा मदन-वेदना की है भुवन-विदित ही।
छवि से उस अभिभूत गया मैं बढ़ता ही चुप आगे,
संकोची लोचन ये अरसिक हैं सच हाय अभागे।
मचल रहा था शिशु-मानस, था स्थविर विवेक मनाता,
चरण युगल रुक-रुक नयनों को हठ अपना दिखलाता।
"क्यों न आज मैं लोक-लाज तज छवि यह जी भर पीलूँ?
उफ! इतना निष्ठुर संयम दृग-विवरों को भी सी लूँ?
युग-युग से संचित मानव की रस-लालसा बुझा दूँ,
त्याग-भोग के चिर-विरोध को सहज अभी सुलझा दूँ"।
मन भावुक कवि, मति परन्तु मेरी दार्शनिक प्रबल है,
प्रकृति रसिक है परम, किन्तु धार्मिक संस्कार अटल है।
सोच रहा, "क्या सच? परंपरा या सुधार, परिवर्त्तन,
पालन सच प्राचीन रूढ़ियों का, या नव उल्लंघन?
सहज मुक्त प्राकृत जीवन, या मनु-सभ्यता चिरन्तन?
निश्चल स्वच्छन्दता वनोचित, या नगरोचित बन्धन?
नभचुम्बी आदर्श मधुर, या कटु यथार्थ भूलुंठित?
प्रिय समाज-मर्यादा, या फिर व्यक्ति-विकास अकुण्ठित?
अपलक नख-शिख जो न लखूँ यह सुषमा रति-मद-मोचन,
अपमानित हों कलाकार विधि, वंचित हों ये लोचन।
जग-उपवन की कलिका यह फिर इतनी बनी सुघड़ क्यों?
महज देख लेने में होता इसे पाप का डर क्यों?"
"मूढ़ हृदय! क्या कहा, देख भर लेने में क्या क्षति है?

विदित नहीं क्या तुझे देख लेने की क्या परिणति है ?।
महज देख लेने से तुम छुट्टी क्या पा जाओगे ?
दृग-कपाट यदि खुले रोक लालसा-लहर पाओगे ?
सुधा न यह लावण्य, समझ तू इसे गरल का प्याला,
शलभ-तुल्य दीपक पर तू क्यों जलने को मतवाला ?"

"वही सही, हाँ वही सही, वह दीपक मैं परवाना,
क्षणिक किन्तु दुर्लभ सुख-हित स्वीकार मुझे मिट जाना।
चख लेने दो, वर्जित तरु का फल यह चख लेने दो,
सजा भुगतने को उद्यत मैं बस मन रख लेने दो।"

"छिः छिः तुमसे पुरुष विवेकी नहीं सोचते ऐसा,
तुच्छ विषय-सुख, अनुपम जीवन, यह गँवारपन कैसा ?
यह माया है मृग-तृष्णा, इस पथ में पग मत धरना,
है शाश्वत आनंद ब्रह्म उसके हित जीना मरना।"

"बस-बस इतना ही, न और अब, तर्क व्यर्थ यह रूखा,
वह परोक्ष, प्रत्यक्ष अजी मैं इन्द्रिय-सुख का भूखा।
बकना जी भर पीछे हँसना, अभी किन्तु जाने दो,
कम से कम पा रहा नेत्र-सुख जो वह तो पाने दो।"

"परनारी की ओर देखना भी अधर्म है भारी,
शंकर ने कह दिया सत्य, है द्वार नरक का नारी।
मैथुन में अष्टाङ्ग गिना दर्शन भी नहीं सुना है ?
छोड़ स्वर्ग की राह नरक-पथ तुम ने स्वयं चुना है।"

"उँह ! अलीक यह स्वर्ग-नरक-कल्पना पुण्य-पातक भी,
क्या ढोये जा रहे पुरानी गाथा तुम अब तक भी।
यह कैसा अपराध ? तृषित नयनों की प्यास बुझाना,
उचित कहाँ तक है प्रतिपल आत्मा को व्यर्थ सताना।

सुरपुर की अप्सरा और अब कितनी होगी सुन्दर.
नरक-ताप क्या है सच इसके विरह-दुःख से बढ़कर ?
दंभ, घोर यह दंभ, वृत्ति को सहज रोकना बरबस,
यही निषेध, निरोध धर्म ? मानव-संस्कृति का सरवस ?
ले विरोध का बीज सभ्यता तब तो स्वयं चली है,
करने का अनुसरण पूर्ण इसका अभिमान छली है।
सरिता सी स्वच्छन्द नीलमणिमय सुषमा-प्रतिमा सी,
भू-विभूति सी व्यथित मर्त्य को मिली सजीव सुधा सी।
अनपेक्षित शिक्षित समाज से यह उरांव की बाला,
अधभूखे अधनंगे जन से इसे पड़ेगा पाला।
प्रस्तरमय गिरि के उर से निर्झरिणी फूट निकलती,
जलनिधि की छाती बड़वानल से तिलतिल कर जलती।
बाहर-भीतर का महान वैषम्य यही दुखकर है,
यह मिट्टी की दुनिया है निःसार, कपट का घर है।
धरे सुवेश समाज आज का यथा परिष्कृत-रुचि है,
क्या उतना ही अन्तरतम भी उसका निर्मल शुचि है ?
ये असभ्य आवास रहित हैं विरल-वसन वनवासी,
बुद्धि सरल पर, भोली आँखें हृदय सहज विश्वासी।
तब क्या यह आवरण छद्म ही देन सभ्यता की है ?
असभ्यता नग्नता अरे ! संज्ञा निश्छलता की है ?
नहीं अनाथालय विधवाश्रम नहीं वार-वनितायें,
बलात्कार या आत्मघात की ज्ञात न इन्हें प्रथायें।
पाखंडी सभ्यताभिमानी सचमुच खूब छके हम,
चौबे से छब्बे के बदले दुबे हाय बने हम।

दबा वासनाएँ पाशव, नर बनने अमर चला था,
किन्तु बना बर्बर दानव, इससे पशु कहीं भला था।
मुझे नहीं अभिमान तनिक भी निज समाज-शासन का,
नगर नहीं, हो तुम्हें मुबारक सुन्दरि! जीवन वन का।
पता नहीं कब पहुँच गया मैं यही सोचते घर पर,
लिये छाप निष्पाप अमिट उस छवि की मानस-पट पर।
जीवन की संचित निधि में अनमोल एक यह धन है,
उस वर्णनातीत सौख्य का प्रिय विनोद-साधन है।

★

सत्

प्रकृति देवी

प्रकृति देवि ! तुम्हीं इस विश्व की
अनिश शासन की अधिकारिणी ।
सुमहती जगती लघु-यन्त्र सी
चल रही तव विद्युत-शक्ति से ।

तुम सगी जननी सब लोक की
तुम चतुर्दश विश्व-विहारिणी ।
विधि रमापति शम्भु सुरेश भी
प्रणत हैं तव शासन मानते ।

भुवन कौतुक-पुत्तलिका निरी
ग्रहण-सूत्र बनी तव लालसा ।
निज कुतूहल में पड़ अम्ब हे
तुम उसे अविराम नचा रही ।

धरणि रङ्ग-धरा अथवा सजी,
गगन का पट-मण्डप है तना ।
शशि - दिवाकर - तारक दीप हैं
यवनिका भ्रम औ तम की टँगी ।

दिवस मास सभी जग-जीव औ
कर रहे मिल सुन्दर नाट्य हैं ।
हर बने इसके नट-राज हैं
तुम बनी उनकी दयिता नटो ।

शिशिर में क्षिति-शासन-सूत्र को
पवन के कर में तुमने दिया।
भुवन को हिम से उसने कँपा
विविध भाँति दिये दुख औ व्यथा।

त्वरित ही उससे अधिकार ले
रख दिया कर में जब ग्रीष्म के।
पड़ बड़े नृपता-अभिमान में
बन गया वह भी अति-चण्ड था।

पुरुष के इस दारुण-कर्म से
घृणित हो पद से च्युत कर उसे।
कर दया, पद को तुमने उसी
सहृदया ऋतु प्रावृट् को दिया।

धरणि थी मधु-माधव से तपी
व्रतति-वीथि दुरातप-शुष्क थी।
विहग औ पशु, कीट, पतङ्ग थे
अति पिपासित जीवन-लालसित।

सकल शस्य विशीर्ण हुए पड़े
गिन रहे घड़ियाँ अवसान की।
वन - महीरुह - हारि - हरीतिमा
न अब थी, अब थी बस पीतिमा।

सर, सरित, सरसी सरसिज-रहित
सलिल-हीन सभी द्युति-दीन थे।
न अब थी क्षिति में मिलती कहीं
हरित - शाद्वल - शालि - वनस्थली।

पर अभी सहसा उसने बुला
असित वारिद जीवन-नाथ को।
अमृत-वृष्टि मही पर डाल के
फिर सजीव किया जग-जीव को।

अति पिपासित भूमि पुनः-पुनः
मधुर नीर अनारत पी रही।
अमित शान्ति विराम प्रमोद पा
विरल श्वास-समीरण ले रहा।

हरित कोमल सुन्दर दूब हैं
धरणि पै इस भाँति बिराजते।
प्रकृति के समितिस्थल में यथा
हरित चादर ऊपर से बिछी।

विविध गायन गाकर नाचते
वन-मयूर विशारद नृत्य के।
थपकियाँ भर वादन-विज्ञ हैं
सलिल-वाह मृदङ्ग बजा रहे।

विविध भाँति मशाल उड़ा रही
विरत हो कुछ अन्तर में तड़ित्।
कर रहा अति शीतल है हवा
व्यजन-भृत्य समीर बना खड़ा।

विहग दादुर मेदुर ताल दे
प्रकृति का करते स्तुति-गान हैं।
इधर मोद-भरे सब मत्त हो
मधुर झींगुर झील बजा रहे।

जल चतुर्दिक् में इस भाँति है
रुचिर लोचन-गोचर हो रहा।
सकल अम्बुद ज्यों चल आ पड़े
धरणि की लखने रमणीयता।

भुवन भग्न हुआ सुख-राशि में
विविध शस्य उगे क्षिति-पृष्ठ पर।
उतर भू पर मञ्जुल खेलतीं
अरुण संहत इन्द्र-वधूटियां।

अति असह्य हुआ पर काल यह
विरहिणी वनिता-जन के लिए।
तज प्रवास सभी घर लौटते
युवक हैं हिय में अभिलाष ले।

जलद के कर में विधु को पड़े
निरख के रजनी विरह-व्यथित।
असित अंशुक धारण कर खड़ी
सिसकती सकती न छुड़ा उसे।

अनिश अश्रु प्रवाहित हो रहे
अवनि सिक्त हुई जलविन्दु से।
कर रहा घन भीषण तर्जना
तड़ित आँख दिखा डरपा रही।

अब सहायक-हीन निशीथिनी
रुदन मूक करुण करती खड़ी।
विनय है करती गिरिजेश से
सदय दो पति से द्रुततर मिला

सहज सेवक को घन से छुड़ा
शंभु ने उसको जब दे दिया।
पहन के नव उज्ज्वल शाटिका
झट गई शशि-सम्मुख यामिनी।

विविध तारक-भूषण-भूषिता
स्मरयुता मुदिता बहुलोत्सवा।
सब प्रसन्न हुए रजनीश भी
मुदित मत्त नभस्तल पै चढ़ा

सुबह में उगते लख मित्र को
जलद के, विधु वारिधि को गया।
हृदय-वल्लभ के निज सङ्ग ही
श्वसुर-मन्दिर को रजनी गई।

तरणि की किरणें क्षण में पड़ीं
धरणि-प्राङ्गण के प्रति कोण में।
तपन-आतप सम्प्रति प्रात का
सुनहला नहला जग को रहा।

हरित शाद्वल-पल्लव-प्रान्त पर
अभिनवोदित-भास्कर-रश्मि से।
पतित सीकर-सन्तति राजती
मरकतों पर मौक्तिक ज्यों खचे।

गगन में बढ़ती बन वृत्त-सी
लग रहीं धवलच्छद-मालिका।
दिन-वधू वरने रवि को चली
कर--गृहीत - स्वयंवर--मालिका।

उदधि वल्लभ से मिलने चलीं
विरहिता चिर की नदियां सभी।
मचलती चलतीं कुछ गा रहीं
मसलती मद से तट-वृक्ष को।

अनिश ही बढ़ते लड़ते चलो
विपद का मग में कर सामना।
गहन जीवन के निज ध्येय पर
यह हमें उपदेश सिखा रहीं।

प्रकृति हैं तव कृत्य अनन्त हीं
कर नहीं सकते हम वर्णना।
कर रही कितना उपकार तू
जगत का निज-स्वार्थ-विमुक्त हो।

पावन सावन

१२/११

~~अरुण~~ की पा किरणें अनुकूल
सुखा पौधे पत्ते फल-फूल।
झुलस कर भूतल को अविराम
चला लेने को ग्रीष्म विराम।

घटा-घट में तब तुम भर नीर
मिटाने चले जगत की पीर।
मचा जब देखा हाहाकार
शोक का रहा न पारावार।

गरजने लगे कड़े कह बैन
चमकने लगे क्रोध से नैन।
हुए तुम ऐसे दुखी अधीर
लगे आँसू के बहने नीर।

देख यह आया मित्र समीर
बनाया तुम्हें धीर-गम्भीर।
चले फिर मिलकर दोनों मित्र
देखने आर्त्त-जगत का चित्र।

देख तुम लगे छिड़कने नीर
हवा खुद करने लगा समीर।
हुई जब ठण्ढी सब की देह
अनिल को बैठाया निज गेह।

घन-कलश में भर जल भरपूर
लगे नहलाने जग को शूर।
इस तरह सह कर पीड़ा आप
मिटाया तुमने भव का ताप।

हुई हरियाली चारों ओर
मचाते दादुर खुश हो शोर।
दीखते हैं सारे मैदान
वारिमय धवल पयोधि समान।

शालि के श्याम विटपों की पंक्ति
देख हिय में होती अनुरक्ति।
नहा, अञ्जलि में मानो नीर,
चढ़ाते रवि को लगती भीड़।

खड़े दिन-रात अम्बु में मौन
सह रहे धूप शीत औ पवन।
कर रहे कैसा तप घनघोर
किये आशा शुभ फल की ओर।

पूछते दादुर उनसे बात
छेड़ता वायु हिला कर गात।
मौन पर करते कभी न भग्न
अनिश रहते तप में वे मग्न।

कहीं कानन शोभा रमणीय
दीखते तरु कैसे कमनीय।
लताएँ लिपटीं उन के संग
मिला ज्यों वल्लभ का उत्सङ्ग।

हरित पत्रों पर नव जल विन्दु
दीखते ज्यों आए शत इन्दु।
असित नभ छोड़ बहुत प्राचीन
देख ऐसा नभ हरित नवीन।

मयूरों का वह अद्भुत नृत्य
प्रकृति का चित्ताकर्षक कृत्य।
विचरना उनका वह स्वच्छन्द
हृदय में देता है आनन्द।

सभी नदियाँ करतीं तट-भङ्ग
जा रहीं सागर को सोमंग।
मार्ग में करतीं विविध किलोल
गीत गातीं जातीं अनमोल।

भरा रस से सारा संसार
दिया हरियाली ने रँग ढार।
प्रवासी लौट रहे निज गेह
तोड़ कर अब विदेश से नेह।

सजा कर रङ्गभूमि सा देश
पहन लोचन-प्रिय नव-नव वेष।
दिखा कितने अभिनय अभिराम
किया पटु नट का तुमने काम।

सींच कर हरा-भरा कर खेत
परिश्रम कर कृषकों के हेत।
कर रहे सुख का पूर्ण विकास
धन्य हो सावन! पावन मास।

आरी होली

आरी होली आरी होली।

नानाविध सुमनों की माला ऋतुराज आप है लिए खड़ा,
डुल रहा चँवर किस भाँति स्वयं मलयानिल के ही हाथ पड़ा,
उद्यत है स्वागत को तेरे आली अलियों की भी टोली।
पाटल नव किसलय पहन-पहन तरु तत्पर होते दीख रहे,
अविराम पपीहे हैं गाना स्वागत-पद तेरा सीख रहे,
उनके सुर में ही मिली मधुर कू कू कोयल की भी बोली।
सहकारों की नव मञ्जरियाँ सौरभ कब से न बिखेर रहीं,
आकुल-उर राह तुम्हारी ये वल्लरियाँ कब से हेर रहीं,
कलियों के मिष हैं खोल रही निज घूँघट भी कितनी भोली!
चर-अचर सबों में फैल रहा उत्साह, बने सब मतवाले,
है सजी प्रकृति, परिधान पुराने उसने सभी बदल डाले,
लो निकल रहीं दिग्वधुएँ भी अब नयी-नयी पहने चोली।
मस्ती में तेरे आने की बच्चे बूढ़े सब दीवाने,
सुनते ही बनते हैं युवकों के झूम-झूम गाये गाने,
तू आ, हम भी अब निकल पड़ें, अपनी अबीर की ले झोली।

★

वसन्त

सहकार-नवल-मञ्जरियों ने सौरभ को अलि-कुल-निलय भेज,
बुलवाया और सजाई भी किसलयमय निर्मल मृदुल सेज।
सुनते अविलम्बित आ पहुँचे रस के मतवाले अलि अनन्त,
वल्लरियाँ मुदित हुईं कितनी पाए निज-निज अनुरूप कन्त।
साथी अब आ पहुँचा वसन्त !

उपवन-मधुशाला में विहङ्ग मधुपान-निरत सब एक सङ्ग,
मधु-सौरभ की होती उमङ्ग, मधुशालाधिप निरुपम अनङ्ग।
साकी कोकिल, सारिका, वन्य सुन्दरियाँ गा गा मधुर गान,
मलयानिल-मधुघट से मधु लें किसलय प्याले कर रहीं दान।
पी कहाँ पपीहा रहा ठान !

सारी दुनियाँ यह मधुशाला, अधिपति उसकी रजनी बाला,
मधुघट यह शशि-तारक माला, नलिनीदल नवल रुचिर प्याला।
हम तुम सब पीते साथ अनिश, यह विमल चन्द्रिका-मधु-हाला,
साकी कैसी चातकी मधुर गा-गा करती है मधु ढाला।
साथी जग होता मतवाला !

जो जहाँ वहीं हैं झूम रहे, तरु तरुण लता को चूम रहे,
सोते उठते गा रहे सभी हैं जहाँ कहीं भी घूम रहे।
डफ, झाल, और करताल, झील, ले ढोल बना कितने टोली,
गाते हँसते रस-भरे फाग, कितनी मीठी मद-मृदु बोली,
साथी कितनी भोली होली !

भाभी-देवर में खूब ठना, काहे को कोई सुने मना,
भर-भर पिचकारी रङ्ग बना, तन रङ्ग-नीर से खूब सना।
ले-ले अबीर केसर, गुलाबजल, इत्र, कुमकुमा, गगनधूर,
सब छींट रहे सब के तन पर, हो भङ्ग-नशे में अधिक चूर।
साथी हम तुम हैं अलग दूर !

रसहीन लताएँ सरस हुईं, क्यों सरस बनी अब तुम सूखी,
रूखी भी मृदु पत्तियाँ हुईं, मृदु पर तुम क्यों बनती रूखी।
चातकी मूक वाचाल हुई, वाचाल अहो तुम हुई मूक,
कोयल की दर्दभरी तानें, सुन उठती हिय में अनिश हूक।
साथी ! मेरी है कौन चूक ?

★

फिर होरी आई

हो री ! फिर होरी आई।
फाग-राग ने फिर विरही के उर में आग लगाई।

आनन कानन का विकसा, जग उपवन-पवन जम्हाया,
अलि दौरे, बौरे, उन्मद सहकार, मौर बौराया,
कुहुकीं पिकी, पपीहे ने फिर रट 'पी कहाँ' लगाई।

नूतन-तन तरु, तरुण अरुण किसलयमय वसन पहन नित,
नव कोमलता लता लिये, उत्कलिका कलिका पुलकित,
प्रिय रसाल के गले डाल जयमाल मालती पाई।

प्रकृति-नटी अनुरागराग-रत, वसुधा सुधा-सरस है,
उन्मन निरख वसन्त सन्त, विधु विधुर-हेतु रिपु बस है,
रज-अबीर दक्षिण-समीर की दिग्वधुओं में छाई।

★

निराशा का अन्धतमस

आज जब सारे संसार में
क्षुधा का ताण्डव नृत्य हो रहा,
सदियों का संचित धैर्य खो रहा।
रोटियों के टुकड़ों को छीन-छीन
आपस में, बच्चे भूखे मलीन
भागते हैं—
पकड़े जा कर वे मां-बाप से
पिट कर दिखाते हैं पेट और रोते हैं।

खेतों में बाबुओं के बीन-बीन
कितने दिगम्बर अकिञ्चन दीन,
लाते हैं यव-कण।
बाँटते बैठते जब दम्पति भून उन्हें
दो-दो दानों के लिए
छिड़ जाता उनमें रण।
जलती जठराग्नि को जल से बुझा कर फिर,
बाँध पेट सो जाते
धूल भरी धरती पर
यही उनका मान होता।

छप्पनों व्यञ्जनों से सज्जित 'डिनर' आता है,
इधर पूँजीपतियों के आगे तश्तरियों में
'डाइनिङ्ग टेबुल' के
नये धुले मेजपोश पर।
भूख तो रहती नहीं,

पहले जो खाया वही अब तक तो पचा नहीं,
पचे कैसे ? बैठे-बैठे ? सोये सोये ?
काम तो उन्हें बस हराम है,
फिर तो कुछ चाट कुछ मुँह बना
"स्वाद नहीं बिल्कुल रसोई में,
कैसा बनाता है मुफ्तखोर"।
लाल-पीले होकर रसोइए पर
जूठा कर सारा सामान दूर उसे फिकवा देते।
हो रहा ऐसा जब उत्पीड़न,
विश्व के विस्तृत इस प्राङ्गण में
दीनता का नग्न नृत्य हो रहा,
हाय! रत्नगर्भा के उर पर ही,
ऐसी घड़ी में ऋतुराज! आज
मुग्ध! तुझे सूझा सिंगार है ?
भूली यह दुनिया तुझे अपने अभिसार में।
मानव ने दानव बन मानवता ही नहीं केवल,
चेतनता मिटाने को पृथ्वीतल से साभिमान–
कटि अपनी बांध ली।
युग-युग गम्भीर आज जलधि का अन्तर भी,
मन्दर सम शत-शत जङ्गी जहाजों से नित्य मथा जारहा।
निरपराध निःशस्त्र निरुपाय
जलचर विचारों की भी स्वार्थी मनुष्य ने नींद अब हराम की,
नियति उनकी वाम की।
उन्मुक्त, निःस्तब्ध अम्बर में
स्वच्छन्द विहरणपरायण विहग जन का
फिरना दुश्वार किया,
समां वायुयानों की बांध-बांध आंधी उठायी उसने।
सर्वसहा के उर पर
कितने कृत्रिम गिरि नरमुण्डोंसे बन चुके;
काम आए वीरों के रक्त से नदियां भी बह निकलीं।

जल, थल औ' नभ में तूफान सा मचा है
रोती हैं दिशाएँ, जब विश्व सारा व्याकुल है,
नव विधवाओं के प्रियतम का स्वप्न भी तू
तोड़ डालता है कह 'पीकहाँ ?' पपीहा रे!
माताओं के कानों में विनोद से कह उठते
'कू' जो छोटे शिशु मीठी तुतली बोली में,
पैशाचिक वध से छिन गए उन लालों की
याद क्यों दिलाती मृतवत्साओं को कोयल री।
कू-कू कर पेड़ों पर ? रुलाती उन्हें ? चिढ़ाती उन्हें ?
छाया निराशा का अन्धतमस कहाँ नहीं ?
चन्द्र ! चाँदनी आज तेरी किस काम की ?
सिसकती है अवनि जब रक्षा हित अपनी ही
किस हृदय से तू वसन्त ! मुझे कहता है
गाने को, हँसने को,
बहने को किस सुख-सरिता की धार में ?

बादल

कृषकों के धन काले बादल !
कितनी चिर विकल-प्रतीक्षा पर तुम आज पड़े इस ओर निकल।
उद्भव तेरा सन्तप्त अवनि के अन्तर का उच्छ्वास व्यथित,
फिर क्यों न देख दुख औरों का उर हो तेरा अवसाद-मथित।
जाते तुम त्वरित दया से गल !

है काय असित कितना ही पर, कृति है तेरी अवदात गौर,
तर्जना हेतु रवि के धारण करते तुम सब रँग ठौर-ठौर।
मानस तेरा पर सलिल विमल !

तेरा शीतल उत्सङ्ग-सङ्ग पा, चपला पल-पल मुस्काती,
सुन स्वर-लहरी तेरी विमुग्ध, नाचती मयूरी मद-माती।
मण्डूक गा रहे अविरत कल !

यह भ्रमि क्या तेरा मुदित नृत्य ? या पीड़ित जगती का प्रेक्षण ?
गर्जन क्या तेरी मधुर तान ? या प्रजा प्रीति का अनुवर्त्तन ?
तुम ही जग की कामना सफल !

तेरे प्रसाद से क्षिति प्रसन्न, होता निराश पा तुझे वाम,
निःसंशय तेरे ही दोनों अभिधान श्यामघन, घन-श्याम।
तुम ही सत्, चित् आनन्द सकल !

*

नीहारकरण

छोड़ चले क्यों दिव्य गगन को किस मृगतृष्णा में तुम भूल ?
प्रेम दिवाने ? मिला कौन वसुधा में तेरा प्रिय अनुकूल ?
खलता नहीं तुझे मतवाले अपना अधःपतन प्रतिकूल ?
भटक रहे अनजान पड़े हो किस मृगतृष्णा में तुम भूल ?
भू-रमणी के मृदुल दुकूल ।

क्यों ठुकराया अनगिन तारों से आलोकित मृदु आकाश ?
अन्धेरी इस विषम धरा पर उतर पड़े अविचारित काश !
सुर-बाला की वीणा-झंकृति बनी न तेरे पद का पाश ?
आए क्रन्दन-ध्वनि को सुनने, यहाँ देखने शांति-विनाश ।
क्यों फिर होते व्यर्थ निराश ?

टूटे हीरक सुर-वधुओं के प्रिय आलिङ्गन में बेहाल ।
केश-पाश में गुँथे सुमन या खिसक पड़े रति-रण के काल ?
अमर-बालकों के कर से या गिरे खिलौने मौक्तिक-जाल ?
या नन्दन-वन के सुमनों के मधु-रस टपक रहे तज डाल ?
बता दो अपना सच्चा हाल ।

मान-रुदन के रजनी-रमणी के हो या तुम अश्रु-कलाप ?
गिरे उसी के नील वसन से या तुम भूषण हीरक-माप ?
अथवा सात्विक भाव-स्वेद से आर्द्र निशा-शाटी की छाप ?
टपक रहे स्वर्णाभ रङ्ग उसके प्रान्तों से हो तुम आप ?
मूकता का कैसा अभिशाप ?

अमर-सरित्, के फेन-विन्दु या शुक्ता-मौक्तिक के अवतार ?
ऐरावत के मद-जल-कण या गिरे दन्त-मुक्ता अविकार ?
रसिक-शिरोमणि माधव का या टूटा मणि-माला का तार ?
खींच दिया शिव का गणेश ने राम-सुमरनी का या हार ?
मचा जग में लख हाहाकार ।

क्रूरों के उत्पीड़न से या निकल रहे अब क्षिति के प्राण ?
इन्दु कराता अतः उसे अपना उपचार सुधा का पान ?
या वह दिग्वधुओं का है स्व-सहानुभूति दृग्जल का दान ?
सर्वंसहे तुम्हारे ही आंसू या गिरते सांझ-विहान ?
निकट तेरा क्या अब अवसान ?

भारत-भू पर या बरसाते अमर देवताओं के फूल ?
अथवा प्रकृति-सहेली सजती माँ के बिखरे लट के फूल ?
आंसू बन या अमर शहीदों के गिरते हैं हिय के शूल ?
धोने को गिरने-पड़ने से लगी हिन्द माँ के तन धूल ?
उसे वे नहीं रहे दिन भूल।

★

सरिते

चल री सरिते ! मत रुक, चल-चल।
सदियों की करुण कहानी सी,
आकुल अन्तर दीवानी सी,
डगमग-डगमग मस्तानी सी,
चुप-चुप धीरे अनजानी सी,
बढ़ती जा आगे ही प्रतिपल।

उर में सागर का प्यार लिए,
यौवन का नव उपहार लिए,
सित फेन ऊर्मि सम्भार लिए,
मुक्तामय अनगिन हार लिए,
पिय के ढिग जा गाती कल-कल।

विजितों का क्रन्दन आर्त्तनाद,
विजयी भूपों का जय-निनाद,
उत्पीड़ित दीनों का विषाद,
कहती रोती हँसती खल-खल।

८५

बरसात

आंसू बरसाती क्या जाने किसकी स्मृति में यह बरसात ?
सूरज मुरझाया तलाश कर किसे महीनों हो असफल ?
चाँद मिटा किस के वियोग की पीड़ा में घुलघुल प्रतिपल ?
किसके विरहानल में जल कर काली हुई दिशाएँ हैं ?
राका लज्जित आज, अमा की प्रजा-अशेष निशाएँ हैं ?
ले विषाद का पुञ्ज कहां से आयी यह भादो की रात ?

चमक-चमक कर चपला पल-पल किसकी राह निहार रही ?
किसे जगाने को यह कड़-कड़ ध्वनि कानों को फाड़ रही ?
काजल के पट से लिपटे बादल क्यों धरा भिगोते हैं ?
आर्त्तनाद से किसे उलहना दे वे रह-रह रोते हैं ?
आभूषण-तारों से सूना प्रकृति–विरहिणी का क्यों गात ?

कोयल और पपीहा किसकी कर पुकार अब हार चले ?
गला फाड़ अब किसे बुलाने दादुर ये भू से निकले ?
भौंरे मौन हुए गा-गा कर फूल-फूल में खोज किसे ?
झींगुर ये पाताल बैठ आवाज लगाते रोज किसे ?
आहें ठंढी भरता किस के लिए फिर रहा झँझावात ?

नदियाँ सारी ये पगली सी कहां दौड़ती जाती हैं ?
सुध-बुध खोकर गिरतीं-पड़तीं, रोती हँसती गाती हैं ?
मधुर याद में पड़ किसकी ये जातीं मर्यादा को भूल ?
मिलने को किससे आतुर ये छोड़ भागतीं दोनों कूल ?
एक दूसरे से मिल तरु ये पूछ रहे किस प्रिय की बात ?

★

हिन्दू-संस्कृति

हिन्दू-संस्कृति वह जग जानी।
इस जगती की लख दुखदाह,
सेवा की बतला गए राह,
~~जिसके सुत लेकर बलि-उछाह।~~
जिसकी सेवा में लगे अनिश कितने भूपति, योगी, ध्यानी।

आया कपोत ढूँढ़ता शरण,
पहुँचा मृग-जीवी भी तत्क्षण,
रख संकट में प्राणों का पण,
दे दिया मांस शिवि ने तन से पर सही न शरणागत हानी।

दे दिया अस्थि भी जीते जी,
तन का अपने, पर आह न की,
भिक्षा में समुदित देवों की,
कब हुआ कौन ? इतिहास बताए उस दधीचि का सा दानी!

बाली बीता, जलनिधि रीता,
रावण भी सदल गया जीता,
जिसके हित वही तजी सीता,
बस प्रजानुरञ्जन-हेतु, राम की मर्यादा को मैं मानी।

चरणामृत को जिसके तरसें,
सुर-नर, उस हरि ने निज-कर से,
आयी जनता के, आदर से,
थी धर्मराज के राजसूय में, पद धोने की जिद ठानी।

था दृढ़-प्रतिज्ञ राणा-प्रताप,
सुन जिसको उठते मुगल काँप,
सह ली विपदाएँ, शिशु-विलाप,
रख ली थी कौमी शान भले ही खाक गुफाओं की छानी।

दीवारों में चुन गये भले,
दोनों भाई मिल गले-गले,
छोड़ा न धर्म जग छोड़ चले,
उन बच्चों की गोविन्द सिंह के अब तक कहाँ मिली सानी।

मर जाए शाहजहाँ प्यासा,
नियति-वश पलटते ही पासा,
पर यहाँ पिता भी अदना सा,
जीतेजी क्या मरने पर भी पाता है लड़कों से पानी।

मनु, गौतम और कणाद, कपिल,
ने जिसे सजाया सश्रम मिल,
जिस की जगती में कीर्ति अखिल,
पाते अबतक रह गए अन्त जिसका कितने ऋषि, मुनि, ज्ञानी।

आयी है कब यह युग में किस,
जाना न किसी ने ढूँढ़ अनिश,
संस्कृति के अन्तःपुर में इस,
उतरीं कितनी कर एक-एक रह गयी यही पर पटरानी।

★

आर्यावर्त

आर्यावर्त हमारा प्यारा ।

लख निर्मल उत्सङ्ग सुहावन, जिसका मलयानिल मनभावन,
उतर पड़ी तज हरि-पद-पावन शीतल सुर-सरिता की धारा ।
परिचर्या में जिसकी तत्पर, उत्तर दक्षिण युगल महीधर,
पूरब पश्चिम दो-दो सागर, करते जिस का चरण पखारा ।
हरित पीत पट श्याम सुनहला, पहनाती हिम कण से नहला,
प्रकृति पवन-कर से खुद सहला, करती जिसका बदन संवारा ।
शत-शत नदियां झरने ले जल, तरु असंख्य ले फूल और फल,
जिसकी पूजा करते प्रतिपल, शिष्य बना जिसका जग सारा ।
कोयल और पपीहा गाएं, जिसकी दिव्य अतीत कथाएं,
मोर नाच कर जिसे रिझाएँ, विधि की वह आँखों का तारा ।
ऋषि-मुनियों ने साम-गान से, नृप वीरों ने शर-कृपाणों से,
राम-कृष्ण ने अभय दान से, युग-युग से है जिसे उबारा ।
मुकुट सदा जो भूमंडल का, स्रोत समस्याओं के हल का,
कोटि-कोटि सुत ने हँस-हँसकर, तन, मन, धन सब जिस पर वारा ।

☆

पंछी

उड जा आंखें खोल पंछी, उड़ जा आँखें खोल ।

बन्दी हुए जमाना बीता, कैसे तुम हो अबतक जीता ?

आजादी जब खोयी, रीता जीवन है, अमोल ?

पंख वही अब भी है तेरे, उड़ता जिनसे सांझ-सबरे,

बैठा क्यों पिजड़े को घेरे, मुक्त गगन में डोल ।

छायी कैसी तुझ पर माया, तूने निज सर्वस्व गँवाया,

पढ़ता किसका आज पढ़ाया, अपनी बोली बोल ।

★

√1

बुझे न यह तन मन की आग

आज पिनाकी लें त्रिशूल,
डमरू कर से वे दूर करें!
मुरली फेंक त्रिविक्रम कर में,
चक्र सुदर्शन क्रूर धरें।

सामगान तज चतुरानन भी,
धनुर्वेद का भेद कहें।
चलें स्वयं शतमन्यु वज्र ले,
अमरपुरी में नहीं रहें।

शूली के गण कहाँ अभी,
रच व्यूह करें वे भी प्रस्थान।
तारकजित् हैं किधर कहो,
ले शक्ति करें सेना अभियान।

विघ्नराज पैदल चल दें,
वाहन मूषिक का छोड़ें साज।
रणचण्डी सब खप्पर ले लें
शोणित-नदी बहेगी आज।

यक्ष-रक्ष गंधर्व करें,
कल्पान्त गीत अब ही से याद।
कह बादल से सोया क्यों, चुप,
हमें सुनावे प्रलय निनाद।

चलें सभी क्रव्याद आज वे,
रक्तपान कर लें जी भर।
दीर्घ घोर निद्रा से जग हम,
रण-कौतुक को रहे उतर।

दिखा शक्ति अवशेष, धरें अब,
शेष धरित्री टूट न जाय।
संभलें अंगड़ाई ले दिग्गज,
धीरज उनका छूट न जाय॥

शिखरि राज तज मूक ध्यान अब,
सेनापति का वेष धरें।
चिरसंचित मार्त्तण्ड आज,
निज अग्नि-किरण निःशेष करें।

चले हिन्दसागर की सेना,
वाडव की तोपें ले साथ।
झंझावात पूछ क्यों बैठा,
तंद्रिल धरे हाथ पर हाथ।

बन तू चारण वाणि,
सुना दे अरी वीर रस दीपन राग
बिना किए निःशेष खलों को,
बुझे न यह तन-मन की आग।

★

नगराज

नगराज तुम्हारी आज लुटी महिमा सारी,
अब झूठा है सिर तान खड़ा रहना तेरा।
यह रौंद रहा तेरी छाती है चीन नीच,
तू ध्यानमग्न बैठा दम्भी, दृगयुगल मीच।
हिल गयी धरा, गूँजा अम्बर, दुनियाँ सिहरी,
कर्त्तव्य-मूढ़ तू देख रहा क्या रे प्रहरी ?
दी गयी चुनौती आज तुम्हारे पौरुष को,
उपहास बना निज को महान कहना तेरा।
कैलाश ! नहीं बन सका दास तू रावण का,
है कहाँ आज उत्पात त्रिपुर-हर के गण का।
यह आत्मसमर्पण निर्विरोध कायरता है,
दुर्गा के जन्मद, छिः, तू किससे डरता है ?
तेरी अलंघ्यता की मर्यादा टूट रही,
दे रहा बढ़ावा दुष्टों को सहना तेरा।
हिम ही हिम क्या तुझ में ऊपर-नीचे डाला ?
ज्वालामुखीय क्या कहीं नहीं तुझमें ज्वाला ?
तीसरा नेत्र दर्पक-हर का क्यों निष्क्रिय है ?
क्या भारत का अभिभव देवों को भी प्रिय है ?
मिल गए निलज षड़यन्त्रकारियों से तुम भी,
आश्वस्त देश का विजय-मुकुट पहने तेरा।

★

फूल बनो

रहो जहाँ भी वहीं सबों के लिए सदा तुम फूल बनो।
जिस समाज में जिस पड़ोस में रहो सदा यह ध्यान रहे,
सह अनुभूति सबों की तुम से, सदा तुम्हारा मान रहे।
दृढ़, गंभीर बनो, छिछला मत होओ, यह तो ठीक कहा,
किन्तु न भारी बनो कहीं भी, इस की भी पहचान रहे,
उदासीन मत, निजसमाज हित कार्यों के अनुकूल बनो।

कुछ मानव देते समाज को अधिक स्वल्प ही लेते हैं,
कुछ करते विपरीत, अधिक लेते थोड़ा ही देते हैं।
कुछ केवल लेते समाज से तनिक नहीं दे पाते हैं,
विरले जीवन का पल-पल अणु-अणु जग को दे जाते हैं।
डूब रहे अरि के हित भी मँझधार नहीं तुम कूल बनो।

सच है होते आए जग में सुखी-दुखी, निर्धन-धनवान,
अवश अबल कर सकता ही क्या मानव, दैव बड़ा बलवान।
किन्तु किसी को विपदा में लख सुखी न होओ, शोक करो,
लोगे क्यों नाहक अपयश तुम, सब तो करता है भगवान,
कभी किसी प्राणी के हित तुम जान-बूझ मत शूल बनो।

सब तो मिट्टी के पुतले हैं, किसे प्राप्त कंचन-काया,
उन्नति-अवनति हर्ष शोक माना यह सब कुछ है माया।
राम और रावण को मन में कृष्ण-कंस को पहचानो,
जीवन-नाटक में भी क्यों खलनायक जाए कहलाया,
बनो ललाट-तिलक उठ कर, गिरकर न पांव की धूल बनो।

★

माया

जीवन के राज

हैं जीवन के सब राज छुपे मक्कारी में,
कुछ बाल धूप में मैंने नहीं पकाए हैं,
उस्तादों की खिदमत से ये गुर पाए हैं,
गुल सभी जिन्दगी के खिलते गद्दारी में।
तुम टीचर हो, वाकई ट्रेजिकल फीचर हो,
तुम हेड किरानी नहीं हेड की रानी हो,
कुछ और लुत्फ है, पोलिटिकल बेकारी में।
नाहक ढोये जा रहे शराफत की आफत,
ईमान निभाने की है तुमको वहम फ़क़त,
चाँदी तो बस कटती शोहदों की यारी में।
तुम एम० ए० हो, वह पी० एच० डी० है लन्दन का,
दोनों ने सत्यानाश किया तन औ धन का,
मैंने तो डी० लिट० पाया दुनियादारी में।
कुछ हैट, बूट टाई से रोब जमाता हूँ,
कुछ मुँह टेढ़ा कर अँगरेजी धड़काता हूँ,
फिर तो कितने आ जुटते खातिरदारी में।
मैं भेंट, रिश्वतें और कमीशन लेता हूँ,
पर ऊपर वालों को भी हकभर देता हूँ,
खाओ, खाने दो अपनी-अपनी बारी में।

★

—२५

बीसवीं सदी का नेता

मैं तो भाई बीसवीं सदी का नेता हूँ।
मैं भी हिम, आतप वर्षा में चल भीषण भाषण करता था,
मैं नहीं जेल से, फाँसी से, कालापानी से डरता था।
मेरे ही त्यागों के कारण है देश आज आजाद हुआ,
बरबाद हुआ मेरा घर, पर उजड़ा भारत आजाद हुआ।
तूफानी आय गँवा मैंने सरकारी भत्ता पाया कुछ,
क्या हुआ ? अगर क्षतिपूर्त्ति हेतु, कुछ इधर-उधर से लेता हूँ।
पार्टियाँ और नजराने तो संस्कृति का चिर अभिमान यहाँ,
धनियों का धन कम करने को मोटी रिश्वत वरदान यहाँ।
कुछ छूट कमीशन कृतज्ञताज्ञापन की प्रथा पुरानी है,
दिन रात लीडरों को मैं भी डालियाँ, दावतें देता हूँ।
सरकारी कुछ सामान-फंड भी अगर काम में लाता हूँ,
तो वह भी सामूहिक हित ही, मैं सच्ची बात बताता हूँ।
मेरे ही भवनों में खुलते कितने सरकारी कार्यालय,
परिवार विदेशों में पढ़-लिख जन सेवा में जुटता निर्भय,
राजसी भवन. शाही मोटर तो देश-कीर्ति हित सेता हूँ।

कितने उद्‌घाटन, शिलान्यास दौरे वक्तव्य किए कितने,
कितने कानून सुधारे हैं, ऋण योजनार्थ पाए कितने।
प्रजा नहीं है असन्तुष्ट यह वामपंथियों का है काम,
गद्दी छोड़ उन्हें अवसर दूँ ? नहीं ! मुझे विश्राम हराम।
देखें सब मैं आमरण देश की नैया किस विधि खेता हूँ।
पहले भी तो तप घोर साध जन देव, इन्द्र पद पाते थे,
कर विविध कठिन उपवास नियम व्रत घर-घर सभी पुजाते थे।
उनका तो हम सब सहते हैं, उनको हम ऋषि-मुनि कहते हैं,
हा-हन्त ! राजनैतिक द्रष्टा साधक घाटे में रहते हैं।
लद गए आज वे दिन जब नर था त्याग स्वर्ग के हित करता,
अब सूद सहित वह यहीं भोग कर पुण्य सकल खाली मरता,
अवसर अलीक भावुकता से खो मैं अनेक अब चेता हूँ।

ऊँची कुर्सी

ऊँची कुर्सी की क्या सच तुम को चाह नहीं,
तो जाओ अपनी राह, मुझे परवाह नहीं।
है कसम खुदा की गर न बाद में पछताओ,
तो मूँछ नहीं, कहना कुत्ते की पूँछ इसे,
पर मूँछें तो हैं साफ, नाम पर ही मेरे,
कुत्ता, बिल्ली, मुर्गी जो कुछ चाहो पालो।
लेकिन यदि दौलत, शोहरत, रोब कमानी है,
दिन रात तरक्की भी मनचाही पानी है,
तो आओ लो गुरुमन्त्र, कान फुँकवा मुझ से,
गुर अष्ट-सिद्धि, नव-निधि का एक खुशामद है।
वेदों शास्त्रों का सार यही, ऋषि-मुनियों का उद्गार यही,
भगवान् उसी का है भूखा, विपदाओं का उद्धार यही,
हरिहर भी स्तुति से खुश हो बरसाते वर,
कौन प्रशंसा सुन अपनी न अघाता नर!।
कर्म मार्ग है बड़ा कठिन झंझट वाला,
अरे भक्ति की पगडंडी है बड़ी सरल।
खूब लगाना मक्खन बातों में सीखो,
अपने साहब के तलवे सहलाओ जी,
दिखा दांत कर जोड़ो पूँछ डुलाओ जी।
मूछों पर दो ताव सामने औरों के,
शेखी दिखला सब पर रोब जमाओ जी।
साहब से अपना उल्लू सीधाकर लो,
पैर पकड़ लो, आंखों में आँसू भर लो।

अगर कहीं इससे भी काम न सधता हो,
बीबी, बेटी और बहन को भी भेजो,
लज्जा क्या इसमें यह राह पुरानी है।
लक्ष्मण को सुग्रीव न जब खुश कर पाए,
कोप-शमन-हित भेजा था कि न तारा को ?
जूए में पाण्डव जब सब कुछ हार गए
नहीं द्रौपदी ने सब वापस पाया था ?
इष्ट सफल जीवन, तो पहले लाज तजो,
फिर साहब को अपने तुम सब, भाँति भजो।
न्यौछावर सर्वस्व 'बौस' को जो कर दो,
तो बदले में अभयदान पा जाओगे।
बैठ निठल्ले प्रोमोशन पाते जाओ,
बड़े काबिलों को अँगूठे दिखलाओ,
बने अगर तुम नाक रगड़ने में माहिर,
कलम रगड़ने से दिन भर बच जाओगे।
एक बात है और, खींचता धन को धन,
नहीं मन्त्र से केवल हो पाता पूजन,
पत्र - पुष्प - नैवेद्य - दक्षिणा - दान करो।
सो, न काम मक्खन जो निरा बना पाए,
पहुँचाने को भेंट द्रव्य संधान करो।
मुन्नों को मिष्टान्न खिलौने, माता जी को कपड़े गहने,
जन्म-दिवस तोहफों से भर दो, साहब को दो "हाँ हाँ" कहने।
सूद सहित ये सब तुमको फिर मिल जाएँगे,
साहब तुम पर कृपादृष्टि जो दरसाएँगे।
सक्रिय रूप खुशामद का यह आज प्रबल,
राम बाण यह, जहाँ और सब बाण विफल।
इसी पाठ से जीवन में सब पाओगे,
इतिहासों में यार! अमर हो जाओगे।

★

लद गया जमाना

लद गया जमाना यार 'गऊ' अब बनने का
अब तो कटाह कुत्तों के हाथ सफलता है।
सब जगह आज हम यही देखते सुनते हैं,
हैं व्यर्थ हो रहे वचन सभी अनुरोध भरे।
प्रार्थना राम की सागर ने न सुनी कुछ भी,
तब धनुष-बाण ले धाए वे भी क्रोध भरे।
दुनिए को जो सब भाँति तंग कर सकता है,
नित नए उपद्रव, शांति भंग कर सकता है,
है सुखी वही जो अविरत गरल उगलता है॥ अ०॥
तितलियाँ पकड़ कर सभी खेलते गाते हैं,
बर्रे को कैसे देख दूर टल जाते हैं।
मैना बन कर तुम पिंजड़े में पड़ जाओगे,
कौआ होओ आजाद जिन्दगी पाओगे।
था वशीकरण कटुवचन नहीं कहना पहले,
गाली गलौज से ही अब काम निकलता है॥ अ०
भय बिना प्रेम अब संभव कहीं न लगता है
सीधे को सारा हाय! ज़माना ठगता है।
तुम सहस्राक्ष बन सब के दोषों को ढूँढ़ों
अब नहीं काम में इसमें सफल सजगता है।
शासक को मुट्ठी में कर लो कठपुतली सा,
लो जान छिपी यदि क्या उसकी निर्बलता है॥ अ०॥

सीधे तरु ही जंगल के काटे जाते हैं,
रवि को न राहु भी विधु को अधिक सताते हैं,
मृग को बहेलिए चीते को न फँसाते हैं,
बिच्छु को ठुकराने वाले पछताते हैं।
जो डँस सकता बन कर द्विजिह्व है लुक छिप कर
उसके आगे अभिमान सबों का गलता है ॥ अ० ॥
यह नहीं कि तुम सबको केवल काटो प्रतिपल,
भूँकना अधिक आवश्यक है काटना विरल,
तुम रख सकते कुछ फूल उदर में भी अपने,
कटु काँटों से हो किन्तु भरा पूरा डंठल,
गालियाँ सदा दें भले तुम्हें सब मन ही मन
तुम मुस्काते हो हाथ जमाना मलता है ॥ अ० ॥
मेरे बयान पर जग चाहे जी भर लें हँसले,
तुलसी ने भी पर खल की महिमा गायी है,
छीना-झपटी में सुधा-कलश टूटे-फूटे,
पर कालकूट ने जगह सुरक्षित पाई है,
गलती यह हो मेरी मन में सबके खलती
मैं तो लखता खलता से भव-भय टलता है।
लो फोड़ खुशी से एक आँख भी तुम अपनी,
गर फूट सकें यों औरों की दोनों आँखें।
गल खुद ओलों की तरह गलाओ औरों को,
जल खुद शोलों की तरह जलाओ औरों को,
खटमल, मच्छड़ की तरह काट खाओ सब को,
निन्दा अपयश तो खाद-तुल्य है जीवन में।
जिस पर जितना ही शाप जगत बरसाता है,
बस, वह उतना ही अधिक फूलता-फलता है।

★

१०२

पाप का घड़ा

पाप का घड़ा जरूर भरता है।
ऊँचा पद पा, मद से अन्यायी बनता जो,
जनता का प्रेम खो उतरता है।
मानव की बात ही क्या, दानव की घात ही क्या,
मानव उत्पात नहीं धरती को सह् य नित्य,
जेठ का प्रताप, पाप अग-जग का शाप लिए,
माघ के निदाघ में सिहरता है ॥ ५।५०॥
नियति-चक्र ढीला है, प्रभु की यह लीला है,
दुःख, दैन्य, राग, द्वेष, अज्ञानज विविध क्लेश,
वारण-हित जग में उत्साह नहीं, उन्नति की चाह नहीं,
और का विकास किसी और को अखरता है ॥
साधन-हित धैर्य नहीं, सत्य-हेतु स्थैर्य नहीं,
लक्ष्य के उपाय सभी, अनुचित साहाय्य-सने,
दिवा स्वप्न आता और ~~रहता~~ है। —
२२।

व्यष्टि या समष्टि बढ़े, कितना भी लुक छिप कर,
कितना भी ढोंग करे, सच्चाई साहस का,
खुल जाती शीघ्र स्वार्थपरता है ॥

कितनी भी देर हो ले, होता अन्धेर नहीं,
धीरे से बगुले सा पाँव जो बढ़ाता है,
ठगता है मूढ़ वह जगत को न, खुद ही को,
बन वही त्रिशंकु तुल्य बस आहें भरता है ॥

सब के दृगों में धूल झोंक करो कुछ भी तूल,
भूल न जा विश्व-यन्त्र चालक वह सृष्टिमूल,
देख रहा प्रतिपल जन-जन का छल-बल,
क्या न तू तनिक उससे डरता है ?॥

नई यह बात नहीं, सब को यहाँ है ज्ञात,
कर्म निर्यात और फल है आयात होता,
चोरबाजारी से तू कोटि-पति बनता था,
पकड़ा जाकर रोकर क्यों नाहक मरता है ? ॥

दुनिया नहीं पहचानी

दुनिया न अभी तुमने है सचमुच पहचानी।
जो जितने ही हैं सगे रक्त से संबन्धित,
ये मन से उतने ही निष्करुण पराये हैं।
मत करो भरोसा कभी भूल कर अपनों का
सपनों के मनमोदक कब किसने पाए हैं?
आ गई जरूरत अगर मदद की है तुम को
अनजानों से वह मिल जाएगी अनजानी॥
ये बन्धु नहीं जीवन के बन्धन हैं मानो,
जितना ही दोगे उतनी माँग बढ़ाएँगे।
साहाय्य, स्नेह कितना भी तुम से मिलता हो,
खुद को ज्यादा हकदार बताते जाएँगे।
उपकार एक भी तेरा बन आभार बड़ा,
पर औरों की आंखो में ला देगा पानी॥
यदि काम तनिक भी कर दें ये कुछ अवसर पा,
जीवन भर सब से तिल का ताड़ बनाएँगे।
दिन-दिन ऋण का दर सूद फैलता जाएगा,
वामन के डग सा ही अहसान बढ़ाएँगे।
अच्छा है थोड़ा कष्ट, असुविधा ही सह लो,
इनसे सहायता न लो, किन्तु यदि हो मानी॥
आदमी आदमी की क्या आशा कर सकता?
आशा तो बस ईश्वर से ही सीखो करना।

आकण्ठ मग्न विपदा में लख असहाय तुम्हें,
वह आएगा ही किसी व्याज से, क्या डरना ?
मानव निमित्त भर है, परिजन या परजन हो,
सब तो करते हैं काम स्वयं अवढर दानी ॥
भाई भाई हैं देव और दानव दोनों,
पर एक दूसरे को कब कहाँ सुहाया है।
इतिहास स्वयं साक्षी मानव का मानव ही,
संहार, विडम्बन, पीड़न करता आया है।
रोना ही आता है तो औरों से रोओ
मत करो बान्धवों से पर तुम यह नादानी ॥
मत मिटो केकड़े सा, रे मत बलिदान करो,
देखो जग का कुछ रंग-ढंग, मत पचो मरो।
उपकार जगत का करने का झंडा पकड़ो,
घर की चिन्ता तज बंडा बन कूदो विचरो।
मत कहीं जलाओ दीपक घर या मस्जिद में,
यह दर्शन जिसका आज वही सब से ज्ञानी ॥
किस किस की अरे, सिफारिश करते जाओगे,
किस किस को दुखड़ा नत, करबद्ध सुनाओगे।
खुश अगर एक, नाराज दूसरा होगा ही,
सबको न कहीं अनुकूल कभी कर पाओगे।
दीनता अगर अपने मन में आ जाए तो,
प्रभु के आगे झुकने में क्या आनाकानी ?॥
अपना उपकार किसी से पड़ जाए कहना,
तो अच्छा है हो मौन कष्ट का ही सहना।
नाता-रिश्ता यदि फिर-फिर याद कराना हो,
तो भला अलग अनजान नाव अपनी खेना।
कीमत अपनी लेने से त्याग तपस्या की,
बेहतर है कर देना अपनी ही कुर्बानी ॥

★

उन्मद दौड़

हाय ! बेतहाशा उन्मद जग कहाँ दौड़ता जाता ?
उछल-कूद अविराम मचाता प्रगतिगीत के पद दुहराता,
लौट धरातल के वृत्ताकृति पथ पर उसी जगह फिर आता,
मानवता रक्षार्थ रक्त मानव का सदा बहाता ॥
प्रस्तर, ताम्र, लोह, कोयला, विद्युत् या युग अणु का ही,
द्वापर, त्रेता, सत्य सबों में कलि है छिपा सदा ही,
जल, [illegible], नभ सा ही जनपद में सबल अबल को खाता ॥
हिन्दू, मुसलिम, सिक्ख, इसाई, सभी डपोरसंख के भाई,
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या से मानवता छाई,
कथनी-करनी का अन्तर कोई भी मिटा न पाता ॥
एकतन्त्र, बहुतन्त्र, अरे जनतन्त्र, अतन्त्र सभी सम,
पराधीनता या स्वराज्य सबमें नृशंसता का तम,
इन्सानों की खाल पहन शैतान नृत्य दिखलाता ॥
पूँजीवादी जन के निकले चचा साम्यवादी हैं,
दोनों के अब कान काटते ये गांधीवादी हैं,
क्या बन्दर बँटवारे का पर्याय राज्य कहलाता ? ॥

क्षत से त्राण करे वह क्षत्रिय कहां कौन दिखता अब ?
सभी उपासक मत्स्य न्याय के, छल-नेतृत्व भरे सब,
मांसराशि पर गृद्ध कभी क्या रक्षा-हित मँड़राता ? ॥
न्याय, चिकित्सा, आरक्षा, शिक्षा, विकास, जनशासन,
घुसे विडालव्रती कामों में सभी लिपिक पिशिताशन,
किन्तु ढिंढोरा रामराज्य का ही है पीटा जाता ॥
राम देख, तेरी दुनिया किस हद तक पहुँच गई है,
मृत मानवता, त्रस्त देवता, दानवता विजयी है,
काश ! विश्व को आत्मघात से कोई आज बचाता !!

★

हिन्दी-चीनी

हिन्दी-चीनी भाई-भाई
ठीक कहा, दो सौतेलों में यह छिड़ गई लड़ाई।
भाई ही थे कौरव-पाडव, गरुड़-नाग देवासुर,
एक दूसरे को विनष्ट कर देने को सब आतुर।
पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, पितामह-पौत्र न सहे चुनौती,
युद्ध-दान दे निर्भय हो, तज प्राणों का भय भङ्गुर,
मर्यादा यह चलती आई।
हिंसा नहीं यहाँ तो हिंसा का विरोध करना है,
निन्द्य आक्रमण है, बचाव पर अपना कहाँ मना है ?
आततायियों के आगे हैं निष्फल क्षमा-अहिंसा,
विश्वंभर को भी इनके दमनार्थ चक्र धरना है।

इनसे रोती धरती माई।
मुरलीधर को नहीं पिनाकी को पूजते दनुज हैं,
महादेव भी संहारक को ही मानते मनुज हैं।
परशुराम और राम, कृष्ण अवतार सभी कहलाए,
दुष्ट-दलन में तत्पर अविरत क्योंकि इन्हीं के भुज हैं।

महिमा वेदों ने भी गाई।
"तिब्बत एक स्वतंत्र देश है" कहने में सकुचाते,
नहीं त्रिविष्टप को देवों के लुटता देख लजाते।
मानसरोवर मानस है, कैलास तुम्हारा मस्तक,
खोकर दक्षिण-भुज जम्मू भी सीख नहीं कुछ पाते!

न्याय न यह निर्बलता छायी।
क्यों न लौह-संकल्प तुम्हारे है पटेल सा प्रण में?
त्राहि-त्राहि मच जाय जहाँ भी निकल पड़ो रिपुगण में।
विपुला की फटकार, वचन कुन्ती के भूल रहे हो?
विजयी बन लौटो घर को अभिमन्यु बनो या रण में।

किसने यहाँ अमरता पाई।
नहीं झगड़ते, 'मैच' खेलते हैं हम यह भी माना,
कहो अखाड़े की कुश्ती, दंगल का करो बहाना।
अभिनय हो या खेल-कूद, है सह्य न हमें पराजय,
द्यूत, चौर्य, छल, धोखेबाजी भी न देख घबराना।

तुम भी कपटी बनो सवाई।

पहेली बूझ रहे ?

अभी पहेली बूझ रहे तुम चोर घुसे क्यों घर में ?
वीणा, पुस्तक, तूली तज तलवार न पकड़ो कर में।
बकते क्यों गालियाँ, हाँकते डींगें क्यों बढ़-चढ़ कर,
अरे मर्द हो तो दौड़ो जूझो न अभी संगर में।
भूमि हजारों वर्गमील है छीनी गई तुम्हारी,
कोस रहे तुम पञ्चशील को पड़े पड़े बिस्तर में।
अपनी मदद करो तुम हो फरियाद सुनाते किसको ?
दाँव जीतते हैं दुश्मन तुम को रख अगर-मगर में।
जब तक ये नब्बे करोड़ भुज शस्त्र नहीं धरते हैं,
कायरता दीखेगी तेरे विश्व-शान्ति के स्वर में।
अस्त्र उठाना प्रथम दस्यु पर भी शायद अनुचित हो,
किन्तु दृप्त आह्वान शत्रु का चुभ जाता अन्तर में।
अच्युत पुरुषोत्तम की ठुकरा सामनीति दुर्योधन,
करता हृदय अजातशत्रु का खुद परिणत पत्थर में।
नहीं अहिंसा फसलों को बरबाद करा देने में,
किन्तु भगाने में शलभों को आग लगा अम्बर में।
भारत का ही नहीं दुष्ट यह जगती का बैरी है,
पशुता का सांकर्य हुआ है इस दानव बर्बर में।
मर्यादा-पुरुषोत्तम ने किस विधि बाली को मारा,
पाप आततायी के बध हित नहीं कपट संगर में।
परशुराम की संतानो, शीतल क्यों रक्त तुम्हारा,
ज्ञान-भक्ति के साथ शक्ति भी ले बढ़ चलो डगर में !

★